जैनमित्रके तेरहवें वर्षका उपहार नं० ३ ।

श्री वीतरागाय नमः ।

अनुभवानन्द ॥

श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रशादजीद्वारा सम्पादित

जैनमित्रसे उद्धृत

और

जैनमित्र कार्यालय, बम्बईद्वारा

बम्बईवैभव प्रेसमें मुद्रित ।

प्रथमावृत्ति } श्री वीर नि० सं० २४३८ सन् १९१२ ईस्वी. { मूल्य ॥)

Editor
SITALPRASAD BRAHMCHARI,
PUBLISHER
Jain-Mitra Karyalaya,
HIRABAG, GIRGAON, BOMBAY.

Printed by
C. S. DEOLE
at his Bombay Vaibhav Press.
1, Sadashiv Lane, Girgaon,
BOMBAY.

प्रस्तावना ।

एको मे शाश्वतात्मा सुखमसुख भजो ज्ञान दृष्टि स्वभावो ।
नान्यत् किंचिन्निजं मे तनुधन करण भ्रातृ भार्या सुखादि ॥
कर्मोद्भूतं समस्तं चपलमसुखदं तत्र मोहो मुधा मे ।
पर्यालोच्येति जीव स्वहितमवितथं मुक्ति मार्गं श्रयत्वम् ॥४१६ ॥

(अमितिगति)

श्रीअमितिगति आचार्य्य कहते हैं, "रे जीव ! तू ऐसा चिन्तवन कर कि मैं एक हूं, अविनाशी आत्मा हूं, सुखदुखको आप ही भोगने वाला हूं तथा ज्ञान दर्शन स्वभावका धारी हूं । शरीर, धन, इन्द्री, भाई, स्त्री, जगत्, सुख आदि कोई भी अन्य जीव मेरी नहीं हैं; क्योंकि ये सर्व जगत्के पदार्थ कर्मसे उत्पन्न, चंचल (क्षणभंगुर) और अन्तमें दुःखदाई हैं । इनमें मोह करना मेरी मूर्खता है और तू अपने कल्याण करनेवाले सच्चे मोक्ष–मार्गका आश्रय कर ।"

प्रिय सत्य मुमुक्षुजनो ! मोक्ष अपने ही आत्माका शुद्ध निरंजन असल स्वभाव है । मोक्ष रूप आत्मा अत्यन्त स्वाधीन सुखका धाम है, साक्षात् शुद्धोपयोगका स्वामी है, साक्षात् स्वसमयरूप है । ऐसे निजस्वरूपके लाभके लिये स्वसमयकी भावना ही साधनरूप है, जिसको अनुभवरसका आनन्द कहते हैं ।

मुक्तिका उपाय न प्राणायाम है और न हठयोग है । मुक्तिका सच्चा उपाय जिस तिस प्रकार राग–द्वेषको दूरकर वीतराग परिणति करके शुभ नाम व शुभ स्थापना द्वारा निज आत्माके गुणोंका अनुभव

करना है । यद्यपि बहुतसे लोग आत्मीक रसके आस्वादको लेना चाहते हैं, परंतु उनको साधु संगतिकी अप्राप्तिसे तथा स्याद्वादनय-द्वारा संगठित पदार्थ मालिकाके ज्ञानका अनुभव न होनेसे वे अपनी भावनाको पूरी नहीं कर सक्ते हैं ।

आत्मानुभवके रसिक मुमुक्षुजनोंके हितार्थ ही हमने अपने उस तुच्छ अनुभवके द्वारा जो हमको श्रीसमयसारजी, श्रीपरमात्मप्रकाशजी तथा अनुभवप्रकाशजी आदि अध्यात्मिक ग्रन्थोंके बाँचनेसे हुआ है, जैनमित्रके अन्दर ता० २१ मई सन् १९०९ के अंकसे ले ता० १० अक्टूबर १९११ के अंक तक **अनुभवानन्द** नामके लेखोंको प्रकाशित किया था। अब हमारे पास बहुतसे भाइयोंकी प्रेरणा हुई कि इन लेखों-को पुस्तकाकार निकाला जाय, इससे यह पुस्तक प्रगट की गई है।

पाठकोंको उचित है कि इसके हरएक लेखको एकान्तमें बैठकर पुनः पुनः कई बार बाँचें। जब बांचते २ उपयोग थिर होगा तब परमअनुभवरसका स्वाद आवेगा । यदि शीघ्रतासे इस पुस्तकको पढ़ा जायगा तो आनन्दका मिलना कठिन होगा ।

यदि प्रमाद व अज्ञानवश इन लेखोंके संगठनमें कोई अशुद्धियां रह गई हों तो विद्वज्जन हमें क्षमा करते हुए सुधार कर पढ़ें तथा हमें सूचना दें ताकि द्वितीयावृत्तिमें सुधार दी जांय।

प्रूफ संशोधनमें जो कुछ अशुद्धयां रह गई थीं, उनका शुद्धाशुद्धि पत्र इस पुस्तकके शुरु में ही लगा दिया गया है; पाठकगण, पहले उसके अनुसार अशुद्धियां सुधार लेवें फिर पुस्तकको पढ़ना शुरू करें।

मुलतान शहर
ता० ८–९–१९१२ ई० } शीतलप्रशाद ब्रह्मचारी ।

विषय सूची ।

नं०.	विषय.	पृष्ठ संख्या.
१	अगम दुर्ग	१
२	अद्भुत चोरी	३
३	भोजन–सत्कार	५
४	तृषा–शमन	७
५	मेरी महिमा	१०
६	युद्धमें गृहस्थ–सुख	१२
७	विवाह–रस	१६
८	दशलाक्षणिक धर्म	१९
९	आगारी साधु	२२
१०	वन–विहार	२३
११	आत्मीक रामायण	२५
१२	स्ववस्तु–वाटिका	२९
१३	सम्यक्तीकी अपूर्व सामायक	३०
१४	आत्मीक बाह्य तप और अद्भुत कषाय	३३
१५	अध्यात्मीक अंतरंग तप	३७
१६	गुफामें विश्राम	३९
१७	मिथ्यात्व गुणस्थानीकी दशा	४१
१८	सासादन गुणस्थानीको बंदना	४५

१९	मिश्रगुणस्थानका दिखाव	४९
२०	अविरतगुणस्थानीको निज-निधि-दर्शन	५१
२१	श्रावकका मोक्ष—महलमें प्रवेश	५४
२२	प्रमत्तसंयमीकी आशक्तता	५७
२३	अप्रमत्तविरतकी भावना	५९
२४	अपूर्वकरणकी बारात	६२
२५	अनिवृत्तिकरण—स्वयंवर	६४
२६	सूक्ष्मसांपरायकी विजय	६६
२७	उपशांतमोहकी क्षणिकता	६८
२८	क्षीणमोही—अर्जुनका विश्राम	६९
२९	सत्यार्थ अरहंतदेव	७१
३०	अयोग केवली	७३
३१	शिव—तिया—संगम	७५
३२	मेरा भाग्योदय	७७
३३	वीर पुत्र	७९
३४	आत्मीक रेलगाड़ी	८१
३५	तत्त्वरूपी अंजन	८३
३६	भेदज्ञान—साबुन	८४
३७	आत्मीक हलवाई	८५
३८	निजगुण—गणना	८७
३९	न कर्त्ता हूं न भोक्ता हूं	८९
४०	गतिमार्गणामें मैं ही हूं	९१

४१	इन्द्रियमार्गणाकी ओछी शक्ति	९३
४२	कायमार्गणामें आकुलता	९६
४३	मैं अकाय हूं	९८
४४	योगमार्गणामें डगमगाहट	१००
४५	देवमार्गणाकी आकुलता	१०२
४६	कषायोंकी वंचकता	१०३
४७	ज्ञानमार्गणाकी महत्त्वता	१०६
४८	संयममार्गणामें स्वरूप विकाश	१०८
४९	दर्शन मार्गणाका अवलोकन	११०
५०	लेश्या मार्गणामें भवभ्रमण	११३
५१	भव्याभव विकल्प न करना	११५
५२	सम्यक्त्व मार्गणाकी झलक	११८
५३	संज्ञी असंज्ञीकी कल्पना	१२०
५४	आहारक मार्गणाका विकल्प	१२२
५५	पंच व्रतोंकी छटा	१२४
५६	अनुभव सुख ही सार है.	१२६

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१३	सरि	सारी
२	१	स भय	सभय
२	४	मानी	मानि
१३	१९	मोहाध	मोहांध

२०	६	सम्मिलित	सम्मलित
२२	१०	मेरा	इसका
२२	१४	मेरा	इसका
२६	३	संतोंके	संतोंको
२६	१५	अपने	अपना
२७	१०	करः	कर
३२	१२	आलम्ब	आलम्बं
३३	१०	बाह्यत्म्य	बाह्य तप
३६	३	तपही	तपन ही
३७	९	अज्ञानुसार	आज्ञानुसार
३८	१०	कालपर	काल पर
३९	१५	खे	खो
६०	१०	सामयिकका	सामायिकका
६५	२०	बञ्जित	बञ्चित
६६	६	सदृश्य	सदृश
६८	११	पदवाकी	पदवीको
६८	१४	बड़	बड़ा
६९	८	अब	तब
७०	१०	कुलटाके	कुलटारूपी
७२	१२	लौं	लौ
७३	२०	अव्यबाधमई	अव्याबाधमई
७४	२	तौ	तो

७४	१४	शात	शांत
७७	१३	जागा	जगा
७८	१९	दृष्टी	दृष्टि
७९	११	सम्यक्ता	सम्यक्तता
८१	८	दृष्टी	दृष्टि
८१	१२	सम्यक्दृष्टी	सम्यक्दृष्टि
८६	३	बेसुद	बेसुध
८७	१५	को शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें शांतकर देती है और जापी आत्माको अपने प्रत्येक सम्मेलन में इस जापी आत्मको	को शांतकर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें इस
८८	२०	को	की
९५	५	८००	८०००
९६	१७	कार्यों	कार्यों
९८	१	धोर	धारे
१०३	८	सम्यक्दृष्टि	परमसम्यक्दृष्टि
१०३	९	पहचानते	मनन करते
१०३	१५	कृतकृत्यका	कृतकृत्यताका
१०४	७	कषाय सब	कषाय व सब
१०४	७	योद्धाओंको	योद्धाओंका

१०७	१४	$\frac{६}{२}$ द्विरूपवर्गधारा १.२	$\frac{६}{२}$ द्विरूपवर्गधारा १.
१०८	१७	प्रतिभा समान	प्रतिभासमान
१११	६	उपयोगका	उपयोगकी
११४	१४	कर्मवंद	कर्मबंध
११८	८	कारणलब्धिद्वारा	करणलब्धिद्वारा
१२३	२०	जीवका	जीवको
१२४	१४	आहरको	आहारको
१२४	१८	अभूपी	स्वरूपी
१२६	७	काष्ठा	काष्ठ
१२६	१३	व्यवहारक	व्यवहारिक
१२८	६	झलकाती	झलकाता

श्रीवीतरागाय नमः ।

अनुभवानन्द ।

अगम दुर्ग ।

(१)

मोहज्वरके आतापसे संतापको प्राप्त करता संसारी जीव क्षोभित मन हो निज स्वरूपकी झलक न पा परपदकी दीप्तिमें भ्रमण करता हुआ तिस विरुद्ध ज्योतिसे प्रदर्शित पदार्थ और उनके परिणमनोंको आतापको शांतिकारक जान उनके निकट जाता है, परन्तु शांतता न प्राप्तकर अधिक दाहज्वरको बढ़ा अधिक २ आकुलित होता है । तीन लोक अलोकका ज्ञाता—दृष्टा, शुद्ध चैतन्यमय अविनाशी, निर्विकल्प, परमानंद स्वरूप प्रभु अपने स्वरूपको भुला आज परपदमें आरूढ़ हो क्यों खेदित हो रहा है यही आश्चर्य है । सिंहशिशु अजोंके वृन्द—समूहमें भ्रमण करता क्यों अज सदृश आचरण कर रहा है यही खेद है । अपनी दृष्टिको परदृष्टिरूप करके पररूप आपको अनुभवन करता अपनी खोटी मानिसे आप ही सिंहवृत्तिको छोड़ क्षुद्र पशु—स्वभावमय हो रहा है । अपनी मानिको पल्टे, तौ आप सर्व पशुवृन्दका स्वामी सिंह ही है, सारे

सिंह पदकी गुप्त शक्ति अपने अनुभवमें आ जाए, क्षणमें ही स भय पदको उन्मूलकर निर्भय हो अपनी शक्तिकी अपनेमें मान्यता करनेसे निराकुल रहे, क्षुद्र संगतिमें न पड़े। अपनी मानि सुखदाई और अपनी मानी ही दुखदाई है। मैं ही सिद्ध निरंजन परमात्मा हूं; मुझसे अन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभादि भावकर्म, ज्ञानावरणी आदि द्रव्यकर्म, शरीरादि नोकर्म—सर्व अन्य ही हैं। वे क्षणिक, मैं अविनाशी हूं। वे मूर्तिक, मैं अमूर्तीक हूं। वे दुखस्वभाव, मैं सुखस्वभाव हूं। वे उपाधिरूप, मैं निरुपाधि हूं। वे सकलंक, मैं निःकलंक हूं। वे पराधीन, मैं स्वाधीन हूं। उनका मेरा जरा भी मेल नहीं। जो उनकी संगति करे वह सदोषी हो। जो मेरी संगति करे वह निर्दोषी हो। मेरी सम्पत्ति अविनाशी, उनकी विभूति विनाशीक। मैं अपने निजआत्मानुभवकी भावनासे परमतृप्त हूं। मुझमें जन्म, जरा रोग, व्यापते नहीं; कर्म रिपु मेरा मुंह देखते नहीं; मैंने अपनी अनुभूतिकी भूमिमें ही अपना अगम दुर्ग बनाया है, उसीमें निवास करता अपनी चिदनुभूति रानीके साथ सुखसे क्रीड़ा कर रहा हूं। मुझे भोजन, वस्त्र, आभूषण, सुगंध, लेप, तेल, फुलेल, शय्या, आसनकी आवश्यकता नहीं। अपना सुधासमूह, अपना भोजन, अपनी निर्मल प्रदेशावली, अपना वस्त्र, अपना ब्रह्मरूप शील, अपना आभूषण, अपना ज्ञान, अपनी सुगंध, अपनी तन्मयता, अपना लेप, अपना आत्मवीर्य्य, अपना तेल फुलेल, अपनी स्वरूप प्रगटता, अपनी शय्या, अपना निरावलम्बन स्वभाव, अपना आसन है। यही सामग्री मेरे और मेरी चिदनुभूति सर्वांगनीके लिये सन्तोष और आनन्दप्रदायक

है। मेरे दुर्गमें अन्य किसी मेरे विरुद्ध पक्षका प्रवेश नहीं। मैं अपनी अद्भुत शक्तिका आप स्वामी हूं। मैं सबको देखता हूं, परन्तु मुझे कोई नहीं देखता। मैं किसीके पास जाता नहीं, परन्तु सब मेरे निर्मल आत्मदर्पणमें (जो मेरे ही अनुपम शय्या महलमें लगा है) आपसे आप अपनी समय २ की परिणतियोंको लिये आ आ कर मुझे अपना रूप दिखा रहे हैं। मुझसे अन्य जन परस्पर एक दूसरेको रागसे ग्रहण करते हैं, परन्तु मैं अपनी चिदनुभूतिरूप पटरानीके सिवाय किसीको ग्रहणकर पर–पद–रत नहीं होता। जिस सुखको पानेके लिए मुझसे अन्य जन तरसते हैं, उस आनन्दको पाकर मैं **अनुभवानन्द** रूप रहता हूं।

अद्भुत चोरी।

(२)

आज मैं, जो अनादि कालसे मोह, मदिराके तीव्र नशेमें बेहोश हो रहा था, किञ्चित् मदकी हीनतासे जो सचेत होता हूं तौ अपने ज्ञानानंद स्वरूप अरूप अविनाशी अखंड त्रिलोकभूप चैतन्य प्रभुको अपनी दृष्टि सन्मुख न देख विह्वल होता हूं और उस वीतराग स्वस्वभाव–गुप्त स्वामीसे राग प्रगट करनेको दौड़ता हूं; जिस जगत् कृत्रिम रूपकी प्रत्यक्ष चमककी दमकमें जाता हूं, वहां ही जलके भ्रममें बालूरेतको पा क्षोभित हो अधिक अधिक अपने श्रेष्ठ इष्ट ईश्वरसे मिलनेकी रुचिरूप–तृषासे बाधित होता हूं। अपने परम स्नेहीकी खोजमें पलायमान होते होते मैं एक शीतल सम्यक्त वृक्षकी छायामें आकर विश्राम लेता हूं और बहु

भ्रमणकी थकनको मिटा क्षणिक विचार करता हूं तौ अपना स्नेह-पात्र अपने अनुपम प्रेम रसमें भिंजोकर मुझे आनन्दित करता हुआ मेरी तृषाको बुझाता हुआ मेरे अनुभवमें मानो प्रत्यक्ष दीख रहा है—ऐसा प्रतीत होता है। जो जगत्के कृत्रिम अकृत्रिम रूप मुझे थोड़ी देर पहले भयानक, विरस, और दुःखदाई मालूम होते थे, वे अभी मुझे निर्भयरूप, सुरस और सुखदाई विदित होते हैं। जैसे नमक विना रसोईके नाना प्रकारके व्यञ्जन अस्वादिष्ट, घृणास्पद और त्यागने योग्य जंचते हैं और वही जब नमक सहित भोक्ताके अनुभवमें आते हैं, तौ सारे सलोने, सुस्वादिष्ट, रुचिकर और उपादेय जाने जाते हैं। वैसेही इस समय सारे हेय पदार्थ निजानन्द रसके झलकते ही मुझे सुरस और उपादेय दिखाई देते हैं। मैं अपनी इस चिरअप्राप्त दृष्टिको उपलब्धकर उन नटवाजोंकी ओर कि जिन्होंने सारे जग—बासियोंको अपनी मतिसे नचा नचाकर और आप उनके साथ नाचकर इस जगत्को एक नाट्यशाला बना दिया है, जब देखता हूं तो उनके भीतर भी मन—अगोचर, परम पदधारी, अविकारी, स्वच्छन्दविहारीको छिपा हुआ अनुभवित करता हूं। वे राग—द्वेष—नटवाज आज मेरे सन्मुख आ अपना स्वांग निकालते हैं और अपनी सौम्य सुन्दर निरुपम मूर्ति मुझे दिखा मेरे मनको चुराकर वीतराग सर्व त्यागी होते हुए भी चोरकी संज्ञाको प्राप्त होते हैं। अब मैं भी इन चोरोंसे मिलता हूं और जहां जहां स्वात्मधन जिस जिसके पास गुप्त पड़ा है उसको चुरानेके लिये अपनी गुप्त भूषणरूप

परिणतिसे उद्योग करता हुआ सर्व विभूति चुराकर अपने त्रिकोटके भीतर गुप्त भंडारमें रखता हूं और उसको भोगकर सुखी होता हूं।

यद्यपि मैं मूषकवत् व्यवहार करता हूं, पर मैं कभी अपने अचौर्य्यव्रतको खंडित नहीं करता। यद्यपि मैं स्वात्मधन चुराकर लाता हूं, तथापि जहांसे लाता हूं वहां वह धन वैसाका वैसा ही विना एक परमाणुको कम किये रहता है। यह कुछ मेरी चोरीमें अद्भुत शक्ति है कि, जिसको मेरे स्वामी भले प्रकार जानते हैं और यह उनकी ही आज्ञा है कि ऐसी चोरी करो, तुम कभी अपराधी नहीं हो।

आज इस वृक्षकी शीतल विवेकरूपी छायामें बैठकर और अपने इष्ट परमेष्टी निरंजन परब्रह्मरूप स्वप्रभुका अनुभवकर सर्व बासनासे रहित अनुपम **अनुभवानन्दको** प्राप्त होता हूं।

भोजन-सत्कार।

(३)

चैतन्य अभिराम गुणग्राम आत्मारामका विश्रामरूप पद अटल, अभय, अचल, अविनाशी और अमर्यादरूप है। जिस पदकी दीप्तिमान किरणावली भवावलीतमको क्षणमात्रमें विलुप्त कर देती है; जिस पदके सन्मुख पदविमुख पदाभास लज्जित हो ठहरते नहीं, जिस पदके धारी, निजधाम विहारी, अविकारी, सुखकारी रहकर अनंतकाल तक भी निजपद—ममत्वको त्यागते नहीं; ऐसे पदके अभिलाषी, भव-बाससे उदासी अपनी मोहपासी काटनेके हुलासी आज अंतरंग भूमिमें

प्रवेशकर भेदज्ञान खड़ग ले चिरकाल प्रवेशित रिपुदलको संहार करनेके अर्थ उद्यमी हुए हैं।

इस खड़गकी दीप्ति पाते ही शत्रुओंके दल कहां बिला गए—सो कुछ पता नहीं। वे रहें या जाएं उनकी ओरसे भयका विध्वंसकर निर्भय हो अनुभव रसका प्रेमी अपनी निर्मल अनुभूति देवीका दर्शनकर उन्मत्त हो उसके अद्भुत रूप रसका पान करते २ ऐसा एकासन हो गया है मानो एक स्फटिकमणिकी पुरुषाकार मूर्ति ही है।

ऐसी स्फटिकमणिकी पुरुषाकार मूर्तिमें अपनी निर्मलताके कारण जो जो पदार्थ प्रतिभाषित होते हैं, वे सब स्वयं अपना जैसाका तैसा रूप देख अपनी पर्यायके अभिमानमें अपने २ स्थलसे सरक कर कभी भी इस मूर्तिमें आते नहीं और न यह उन्मत्त पुरुष दौड़कर उनकी तरफ जाता है। इस अंतरंग भूमिमें रमनेवाले पुरुषका स्वमानका अभिमान इस पुरुषको सर्व अन्योंकी प्रीतिसे तुड़ाकर एकाकी कर देता है; तथापि इस मुग्धको सुध नहीं. यह किसीकी भी परवाह न कर अपने अनुभव रसके स्वादमें मग्न है।

यद्यपि यह उन्मत्त है तथापि इसकी अनुभूति देवी सदा सावधान है। इसके शत्रु, जो इसकी खड़गकी चमकसे लुप्त हो गए थे, रह रहकर इसको दबानेके लिये आते हैं। उनका मुख देखते ही अनुभूति देवी इसे चिताती है। यह उसी क्षण भेद—ज्ञान—असिको चमकाता है। वे दुश्मन फिर गुप्त हो जाते हैं।

इस प्रकारकी उन्मत्तता उन्मत्त पुरुषको कैसा बना देती है, यह तो वह पुरुष ही जाने या उसका निज निर्मल रूप जाने। इस ज्ञानमें पर—पद अपनाने वालोंकी गम्य नहीं।

जो उन्मत्त पुरुष इस तरह रहने लगते हैं लोकके सावधान प्राणी इसे छोड़ देते हैं, परन्तु यह किसीको छोड़ता नहीं । यह सर्व चेतन शक्तिवानोंको अपने आनन्द घरमें स्वानुभव–रसका मिष्ट भोजन करानेके लिये निमंत्रण देता है और अपनी अनुभूति देवी द्वारा यथायोग्य स्वागत करा एकरूप निर्मल सुखासनपर बिठा परमामृत ज्ञानरस वैराग्यके अनुपम चैतन्यधातुमई प्यालोंमें भरकर अपनी परमोपकारिणी देवी द्वारा दिला आप भी उसी क्षण ज्ञानरस पी परस्पर सुख विलास प्राप्त करा अपने आत्मीक घरको पवित्र करता हैं। ऐसे व्यक्तिको सर्व जगत् प्रिय है, परन्तु यह जगवासियोंको प्रिय नहीं। इसकी निराली गृहस्थी किसीके देखनेमें आती नहीं, परन्तु यह वीरात्मा स्वाधीनताका उपासक हो पराधीनताको दग्धकर अपनी चिदनुभूति देवी सहित धर्मकल्पवृक्षसे मनोज्ञ इच्छित स्वानुभवरूप फलको प्राप्तकर अपनी अनादि क्षुधाको शमन करता हुआ अपने स्वरूपाचरण उपवनमें क्रीड़ा करता हुआ **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है ।

तृषा-शमन ।

(४)

संसारके संसरणमें स्वभावगुप्त संसारी चिर भ्रमणके खेदसे थककर और भवातापकी तीव्रतासे तृषाकी उत्कटताको प्राप्तकर विह्वल होता हुआ ज्योंही निर्मल मिष्ट स्व–रसपूर्ण सरोवरको देखता है, यकायक घबड़ाकर आता है, अपने तनके निजविरुद्ध स्वभावधारी

वस्त्रोंको फेंकता है और विना किसी ओर देखे नग्न हो स्वरस–सरोवरमें प्रवेश करता है। शांत, मिष्ट, निर्मल स्वरस पूर्ण, स्वानुभवकी वैराग्य पवन द्वारा प्रेरी हुई, कल्लोलें जब उस पुरुषके तनको स्पर्शित करती हैं और अपनी शांतता उसके प्रदेशोंके अन्दर प्रदान करती हैं तब उस पुरुषको जो भवातापकी शांततासे निराकुलता प्राप्त होती है उसको वही जानता है या ज्ञानानन्दी सिद्ध परमात्मा जानते हैं। अपने निर्मल विवेकके चुल्लुओंसे शुद्ध स्वरस–जल लेकर जब अपने स्वरूपाचल मुखके भीतर क्षेपण करता है तब वह पुरुष तृषाको शमनकर अनुपम जलकी अपूर्व मिष्टताका स्वाद लेले तृप्ति रहित होता है। पीते पीते अघाता नहीं, पीते पीते कभी पेट फुलाता नहीं, ऐसे जलका पानकर प्रफुल्लित वदन व्यक्ति अपनी शक्तिकी व्यक्तताकी झलक पाकर सचेत होता है और उस सरोवरमें ही निरन्तर अवगाह करनेका संकल्प करता है।

अपने तनको हुलसायमान देख और भव–वनमें भटकते हुए अपने पूर्व साथियोंसे अपनेको श्रेष्ठ मान ज्यों ही वह अपनेको परमात्मा, परब्रह्म, अविकारी, मोक्ष–ग्राम–विहारी, अतुल पराक्रमधारी अवलोकन करता है कि यकायक इस मानके अभिमानमें उन्मत्त हो सर्व जगत्को भुला, द्वैत्य भावको गला, अद्वैत हो, निजज्ञान–तनमें विराजित रह स्वरस–सरोवरके भीतर उन्मत्त चेष्टा करने लगता है। सारे सरोवरको अपना नृत्य–स्थान बना नाचता है। ऐसे नृत्यका करैया, निःशंक–सम्यक्त–गुण धरैया, स्वपदमें बसैया, जब जब नृत्य करते २ रुकता है, अपने तनको पहिले समयसे अधिक

अधिक विशुद्ध देखता है। नृत्यके प्रपंचमें रंजित स्वपूर्ण शुद्धता-अभिलाषी अपने धारावाही प्रयत्नसे अपने उद्देशको पूर्ण करता हुआ जब अपनेको परम शुद्ध अवलोकन करता है तो अपने तन-की और उस सरोवरके जलकी आभामें कुछभी फेर नहीं देखता। जैसा ही क्षीर समान निर्मल जल, वैसा ही स्फटिक समान निर्मल तन। दोनोंकी शुद्धतामें तीनों लोक और अलोक एक ही समयमें समाजाते हैं। अन्य २ समयोंमें त्रिलो-कालोक अपने स्वरूपको बदलता है तो वैसा ही इन दोनोंकी नि-र्मल भूमिमें प्रतिभाषित होता है। संसारी रागी जीव अपने आशाग-र्त्तमें जिन तीन लोकको रखना चाहता है और वे उसके गर्त्तमें आते नहीं, वे ही तीन लोक अपने बंधु अलोक सहित आज इस व्यक्तिके निर्मल तन–दर्पणमें प्रफुल्लित हो आ बसे हैं–यही एक बड़ा आश्चर्य है। यद्यपि यह तीन लोकका स्वामी हुआ है, तथापि यह इन तीनों लोकोंकी एक अणुमात्र वस्तुको भी नहीं छूता है, न उनको ग्रहण करता है और न छोड़ता है। यह कुछ इसीमें अपूर्वता है कि थाली सामने रक्खी है, पर खाता नहीं। अहा! यह इन तुच्छ जगत्के ज्ञेयाकार पदार्थोंका क्या स्वाद लेवे? जो पदार्थ क्षण २ में स्वरूपसे विरूप हो जाते हैं। यह तो अपने आत्मीक रसका स्वाद लेता हुआ, उसीको निरंतर अनुभव करता हुआ, उसीको अपना सर्वस्व मानता हुआ, उसी रसके पुंज अथाह स्वभावरूप सरोवरमें उन्मज्जन होता हुआ क्षणिक, पराधीन, विरस फलरूप आनन्दोंसे विलक्षण नित्य **अनुभवानन्द**को पाता हुआ विश्राम करता है।

मेरी महिमा ।

(५)

आज मैं कर्त्तापनेके कटुक, विरुद्ध और निःसार भव–विकारको त्यागकर निज ज्ञाता–दृष्टा स्वभावमें कल्लोल करनेके लिये उद्यत हो गया हूं । मेरा बनाया भव–विकार मुझे ही विष–आहार सा हो चुका है । जिस विकारने मुझे पराधीन बंधनमें डाला और मेरी स्वतंत्रताका आघात किया उस शत्रुवत् प्रपंचधारी व्यवहारीसे मुझे क्या प्रयोजन ? मैं चैतन्य–रसका चैतन्यमई घट हूं । मेरा उपादान और निमित्त कारण एक ही है । मुझे त्रिलोकमें भरे किसी परमाणुके अवखरे* मात्रसे मतलब नहीं । मैं कभी किसीको बनाता नहीं । मैं कभी किसीको बिगाड़ता नहीं । मैं अपने स्वस्वभावमें अविचलित रह सदा निज रसका ही पान करता हूं । मुझे क्रोध, मान, माया, लोभ और उनके पिता राग, द्वेष तथा महापिता मोहसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं । मैं शांतरूप हूं, वे उद्वेगरूप हैं । मैं ज्ञानरूप हूं, वे अज्ञानरूप हैं । मैं निष्क्रियरूप हूं, वे क्रियावान व्यवहाररूप हैं । मैं गुणनिधान हूं, वे गुण विरुद्ध औगुण निवास हैं । मैं निरपराधी हूं, वे अपराधवान हैं । मैं निर्बंध हूं, वे बंधसहित हैं । मैं एकाकी एक रूप हूं, वे अनेकानेकरूप हैं । मेरा उनका त्रिकालमें सम्बन्ध नहीं, मेल नहीं, स्पर्श नहीं; न मैं उनका कर्त्ता, न वे मेरे कर्म । मेरे निर्मल ज्ञान दफ्तरमें कर्त्ता कर्मका शब्द ही नहीं । मैं

---

* अविभाग परिच्छेदरूपगुण.

शुद्ध आहार–भोजी, अपनी शुद्ध परणतिका निरंतर खोजी हूं। मुझे मेरे ज्ञान–साम्राज्यका प्रबन्ध है, जिस प्रबन्धमें अनुरक्त मैं जगत्के प्रपंचरूप प्रबंधसे असम्बन्ध हूं। मेरा ज्ञान–साम्राज्य मेरी ही निरन्तर सावधानी और परम पुरुषार्थके बलसे अटल है। यद्यपि मैं त्रिलोकालोकमें व्यापक हूं, परन्तु सदा ही निज थलको न तजकर अव्यापकरूप हूं। यद्यपि मैं इन्द्रिय–ग्रामोंकी रचनासे शून्य हूं, तथापि अपने अतीन्द्रिय गुण ग्रामका धाम होकर अशून्य रूप हूं; यद्यपि मैं निज परिणाम–कर्मके करनेसे कर्त्ता हूं, तथापि परकर्तृत्त्वके अभावसे सदा अकर्ता हूं। यद्यपि मैं निज परिणति रमनके स्वादका भोक्ता हूं, तथापि परपदार्थका स्वाद न लेकर सदा अभोक्ता हूं। यद्यपि मैं परवस्तुओंकी प्रवृत्तिकी इच्छासे रहित सदा कृतकृत्य हूं, तथापि निजात्मीक स्वस्वमयरूप प्रवृत्तिमें प्रवर्तन करता हुआ सदा अकृतकृत्य हूं। यद्यपि मैं अपने आत्मीक द्रव्यका धारी अपने द्रव्यको सदा ज्योंकी त्यों रखकर नित्यरूप हूं, तथापि केवलीगम्य षट्गुणी हानि–वृद्धिरूप समुद्र–कल्लोलवत् अगुरुलघुगुण परिणमनके कारण नित्य पर्य्याय द्वारा व्ययोत्पादको सहन करता हुआ अथवा नित्य अपनी अवस्थाको बदलनेवाले ज्ञेय पदार्थोंके मेरे निर्मल ज्ञान–दर्पणमें समय २ परिवर्तन होते हुए ज्ञेयाकारोंकी अनित्य स्थितिके झलकनेके कारण उस झलकनको धारण करता हुआ अनित्यरूप हूं। यद्यपि मैं केवलज्ञान–तनका धारी होकर अपने जाति स्वभावधारी केवलज्ञानियोंसे प्रत्यक्ष और सम्यग्ज्ञानियोंसे परोक्षरूपसे दर्शने योग्य हूं, तथापि निजानुभवरहित छद्मस्थ अज्ञानियों द्वारा सदा ही अदृश्यरूप

हूं। मेरी शक्ति निराली है। मेरे ही अनुभवने मेरी शक्तिकी व्यक्तता निकाली है, परमपदधारी परमेष्टी, पंचनाम व्यवहारी, अविकारी, साम्य प्रचारी, सुखकारी, मेरे ही अनुभवकी अपूर्व महिमा है। मुझे जो कोई विभाव भावोंका और परद्रव्योंका कर्त्ता कहे वह स्वयं अज्ञानी और अनुभव–रसरहित, बिरसका स्वादी, मोह व्याधिसे पीड़ित परमानी है। जिन्होंने आत्मबाग लगाया है और उसमें सुगुणरूपी सुगंधित पुष्पोंको उगाया है वे आत्म–मोही मुझे कभी भी परका कर्ता कहनेके नहीं। मैं आज अपने स्वतंत्र बलके अभिमानमें उन्मत्त हो अपने आत्म–बनके भीतर क्रीड़ा करता हुआ स्वात्मगुण पुष्पोंकी सुगंधको लेता हुआ और निज परिणतिरूपी अर्द्धाङ्गिनीके साथ सैर करता हुआ परआनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता हूं।

युद्धमें गृहस्थ–सुख।

(६)

जिस शत्रुने अपने तीव्र पराक्रमसे तीन लोकके संसारियोंको जीतकर अपना विजयका डंका बजाया है और जो अपने त्रिलोक-विजई अभिमानकी मदिरा पीकर उन्मत्त हो युद्ध–स्थलमें आकर खड़ा हो अपना पेट फुला रहा है–ऐसे शत्रुको जीतनेके लिये आज मैं अपराजित भेदज्ञानका धनुष हाथमें लेकर खड़ा हो गया हूं। मेरे धनुषकी टंकारके सामने किसीकी भी ताकत नहीं है कि जो टिक सके। मेरे भेदज्ञान धनुष्यसे निकला हुआ वीतराग भावका बाण

ज्यों ही उस शत्रुकी तरफ जाता है वह मेरे सामनेसे दूर हो जाता है। पर मेरा थंभना कि फिर वह प्रबल रिपु मेरे सामने आ मुझे अपनी कठोर दृष्टिसे घूरने लगता है, परन्तु मुझे इसका कुछ भय नहीं। मैं तो जानता हूं कि मैं अजर, अमर, अखंड और स्वाधीन हूं। मेरे साथी भाई बन्धु अनन्तानन्त मेरे ही सारखे अनंत-बली विद्यमान हैं। मुझे एक यह क्या, इसके ऐसे अनंतानंत शत्रु आ जांय तो मेरा क्या कर सक्ते हैं? इसका जोर तो उन्हींपर चलता है जो अज्ञान मंदिरमें बैठे २ अपनी इन्द्रियोंकी चाकरी किया करते हैं और मन-मोहन नटवाजके चलाए चलते, बैठाए बैठते, दौड़ाए दौड़ते, रुलाए रोते, हंसाए हंसते, खिलाए खाते, सुलाए सोते, और बहकाए बहकते हैं। तीन जगत्में चारों गतिके प्राणियोंका प्रायः यही हाल है। प्रायः सर्व ही अपने बलको भूल-कर बेखबर हो रहे हैं, इसी लिये यह शत्रु सर्वको जीतकर मानके पर्वतपर चढ़ा हुआ है, परन्तु मैं जिस मानके पर्वतपर आरूढ़ हूं, वह इस शत्रुके तुच्छ पहाड़से कहीं ऊंचा है। यह शत्रु मोहाध हो यह नहीं देखता है कि मैं नीची जगहपर हूं, विना विचारे मेरा मुक़ाबला किये ही जा रहा है। मैंने भी स्वआचरणरूपी बाणोंके समूहको सम्हाला है और अब मैं इसके ऊपर ऐसी बौछाड़ करता हूं कि जैसे घनघोर मेघवृष्टिकी बौछाड़ होती है। अवश्य यह मेरी बौछाड़से डरकर भागेगा और फिसलकर पर्वतके नीचे हो रहेगा। इतना विचारकर अंतर्मुहूर्ततक वीतराग बाणोंकी बौछाड़ जो मैंने छोड़ी वह विचारा इधर उधर रास्ता ढूंढ़ मेरी नज़रसे बाहिर चला

गया, परन्तु ज्यों ही मैं जरा दम लेता हूं कि वह निर्लज्ज फिर सामने ताकता है। सच है, मैं पंचम गुणस्थानके रेजिमेंटका सिपाही हूं। मेरे बाणोंमें उतना बल नहीं जितना श्रेणी–आरूढ़ लेफ्टिनेन्टोंके बाणोंमें होता है, परन्तु मैं अब आलस्य करनेका नहीं, मैं तो इसको बारंबार बाण मारे ही जाऊंगा। मेरा यह अभ्यास ही मेरी उन्नति करेगा और मैं कुछ कालके भीतर अवश्य श्रेणी आरूढ़ हो तीव्र बाण चला इस शत्रुको मार मारकर निर्बल कर दूंगा और बारहवें दर्जेपर पहुंचते ही इसको ऐसी अधमरी हालतमें कर दूंगा कि यह निर्बल आंखोंसे मेरी ओर देखता रहे, परन्तु अपना सारा अभिमान और अपना सारा बल भूल जाए। मैं जहां चौदहवें दर्जेमें पहुंचा और अपने अनंतगुणरूप सेनाका स्वतंत्र कमान्डर–इन–चीफ (सेनापति) हुआ कि इधर इस शत्रुका भी प्राणान्त हुआ। मै जानता हूं कि यह वैक्रियक* रूप धारी है, नाना रूप होकर नाना जीवोंको सताता है। इसकी जो अनादि अनंत शक्ति है उसको यह प्रयोग तो करेहीगा। करे, जिनके दुर्भाग्य हैं उन्हींपर इसका आक्रमण होगा। मैं तो समझ गया हूं। मैं तो इसकी नस नससे जानकार होगया हूं। मेरा इसका मुक़ाबला तो थोड़े ही दिनके लिये है। मुझे निश्चय है कि मैं इसे एक दिन मारकर गिरा दूंगा और तब यह अनंत कालमें भी मेरा मुक़ाबला करनेको खड़ा नहीं हो सक्ता।

मुझे अब भी आनन्द है, मेरा कुछ भी बिगाड़ यह आश्रव नामधारी शत्रु नहीं कर सक्ता। यद्यपि मैं इस शत्रुसे युद्ध कर रहा

* कर्माण वर्गणाके आश्रवसे प्रयोजन है।

हूं, तथापि अपनी अपूर्व शक्तिके प्रादुर्भावसे अपने अनुभवके व्यापार-को करता हुआ स्वात्म–ज्ञान–धनको अत्यन्त न्यायपूर्वक उपार्जन करता हूं। मेरी वीतरागता माता और सम्यग्ज्ञान पिता हैं। मेरी स्त्री मेरी अनुभूति है। मेरा पुत्र विवेक है। मेरी पुत्री दया है। मैं अपने धनसे नानाप्रकारके आत्म–रस–गर्भित व्यञ्जनोंको अपनी स्त्री द्वारा तय्यार करा अपने सर्व कुटुम्बको तृप्ति करता हुआ आप भी उन्हें भक्षणकर संतोषित होता हूं और अपने परिवारकी एकता और सुमतिका आनन्द लेकर परम आल्हादित होता हूं। मेरा कुटुम्ब लौकिक रीतिको पालता हुआ भी पारलौकिक परब्रह्म स्वरूप स्वधर्म सेवासे विमुख नहीं है। जिस कुटुम्बमें धर्म और कर्म दोनों होते हैं वही कुटुम्ब कुटुम्ब है अन्यथा पाप–मंदिर और नर्क–निवास है।

गृहस्थीके अद्भुत सुखको भोगता हुआ तथा परमात्मस्वरूप महा मुनियोंको शुद्ध परमामृत नैवेद्यका आहार–दान देता हुआ मैं अपने जन्मको कृतार्थ मान रहा हूं। मैं मोक्ष अवस्थाका साक्षात् साधक हूं। मुझे इन्द्रियाधीन पराधीनता नहीं है। मैं तो प्रत्येक प्राणधारीमें रहने योग्य स्वातंत्र्यताका पक्षपाती हूं। मुझे मेरी स्वातंत्र्यता (Independence) ही निराकुल, अपूर्व और निर्विघ अनुभवानन्दका अनुपम सुख प्रदान करती है।

———

विवाह-रस ।

(७)

परमामृतके प्रवाहसे परिपूर्ण, स्फटिक समान निर्मल, स्वच्छन्द, चिज्ज्योति विलासी, अविनाशी, अत्यानन्दधामप्रवासी, कर्मराहुग्रसन-रहित, विभावमेघाडम्बरविरहित, स्वभावपरिणमनविकाशसहित ज्ञान-चंद्रमा आज मेरे स्वच्छ हृदयरूप आकाशमें उदयको प्राप्त हुआ है। मेरे अद्भुत चंद्रकी चांदनीके सामने जिधर देखता हूं पीतत्व पीतत्वही विदित होता है। कहां गए वे राग और द्वेष, जिनके वशमें पड़ा हुआ मैं किसीको शुभ और किसीको अशुभ देखता था। धन्य है आजका समय ! जिन दुष्टोंने मुझे कभी पापी और कभी पुण्यात्मा कहलाया और मुझे अनादि कालसे अत्यन्त दुःख दिये उन्हींकी सूरत आज मैं नहीं देख पाता हूं। जो मैं बहुत ध्यानसे देखता हूं तो मैं अपने चंद्रमासे भिन्न अचेतन अवस्थामें पड़े हुए और स्पर्श, रस, गंध, वर्णको लिये हुए एक पुद्गलके समूह मात्रको देखता हूं, जिस समूहका स्थूलसे स्थूल सुमेरु पर्वत सदृश टुकड़ा अथवा सूक्ष्मसे सूक्ष्म परमाणु समान अंश मेरे चंद्रमाके स्वभावसे सर्वथा भिन्न है। जिस पुद्गल समूहके किसी अदृश्य विभागको मैं अपनेही अज्ञानसे पुण्य और पापके नामसे पुकारता था, वही विभाग आज मेरे ज्ञान-चंद्रमाके निर्मल प्रकाशमें एक नामसे और एक रूपसे प्रतिभाषित होता है। मेरे चंद्रमाका विमान उज्ज्वल, निर्बाध, और चिन्मूर्तिमयी है। उसको कोई भी पुद्गल-समूहका विभाग मलीन

आच्छादित और विकारी नहीं कर सक्ता। जो ऐसे चंद्रमासे विमुख होकर परपुद्गलोंको, धन, धान्य, स्त्री, कुटुम्बादिकोंको अपना बनाते हैं और उनकी संगतिमें अपना महत्व मानते हैं वे इन्द्रियाधीन प्राणी कर्म–पासीसे बंधे हुए, बंधमार्गमें संसरण करते हुए, संसारी, व्यवहारी, आत्मज्ञानविसारी रहकर, परमपदके पथसे विपरीत चलकर, आकुलताका असह्य दुःख प्राप्त करते हैं। मैं अपने चंद्रमाको देखता हुआ आज निराकुलित रहकर परम सुख प्राप्त कर रहा हूं। अनादि कालसे अनुभव–रसके पाए विना मैं अपनी तृषा शान्त नहीं कर सका था सो आज इस चंद्रविम्बसे झड़ते हुए अमृतको पीकर परम तृप्त हो रहा हूं। इस अनुभव–रसकी मिष्टतामें पुष्टता भी विद्यमान है। मेरा तन जो सांसारिक संकल्प विकल्पोंके गमनागमनसे दुर्बल हो रहा था आज इस अनुभव–रसको पीकर पुष्ट और बलवान् हो रहा है। मेरे तनकी आभा जो विभाव गुणोंकी संगतिके कारण क्षीण हो गई थी, सो आज इस अमल रसके पान करनेसे समय २ वृद्धिको प्राप्त हो रही है। मेरे चक्षुओंमें मेरे तनकी क्षीणताके कारण देखनेकी शक्ति मन्द और विटरूप पड़ गई थी सो आज तनकी पुष्टताने मेरे चक्षुओंको तीव्र और अविकारी बनाकर मेरे साथ बड़ा भारी उपकार किया है। मैं इन चक्षुओंसे जिधर देखता हूं उधर ही वीतरागताका प्रसार पाता हूं। यद्यपि जगत्में अनन्ते ज्ञेय पदार्थ हैं, तथापि मेरी दृष्टिमें कोई भी समाते नहीं। मुझे सब एक अचेतनका पिंड विदित होता है। मेरी दृष्टिकी समानता और अविकारता उन पदार्थोंसे अविमोहित रह अपने चैतन्यके अभिमानको कदापि त्या-

गती नहीं। ऐसी निर्मल दृष्टि और निर्मल तनका धारी होकर आज मैं शिव–कन्याके वरनेको उद्यमी हुआ हूं। मैं अपने **विवेकदूतको** भेजकर शिव–कन्याके साथ सगाई कर चुका हूं। **भेदज्ञान**–अश्वपर आरूढ़ हो, **उत्तम क्षमादि दश धर्मरूप** बरातियोंको संग ले, **सोहं सोहं** बाजित्रोंकी ध्वनिको प्रकट करता हुआ, **स्याद्वाद** जिनवाणीकी विजयरूप पताकाओंको लहराता हुआ, **निर्मल भावरूप** श्वेत रेशमी वस्त्रोंको पहने हुए, **मोह–विजयरूप** मौड़को बांधे हुए, मंगल गान गानेवाले **अध्यात्मिक** ग्रन्थरूप भजन–मंडलीके साथ अनुपम वैराग्य–रसकी मनोहर छटाको विस्तारता हुआ मैं श्री शिवमतीके गृहद्वारपर आ गया हूं। श्री शिवदेवीकी जननी वीतराग–विज्ञानता अपने घरके द्वारपर आकर मेरे ऊपर मंगलीक परिणामरूपी अक्षतोंको क्षेपण करती है और निर्मल ज्योतिको जगा-कर मेरी आरती उतारती हुई योग्य स्वागत करती है। समुचित समयपर मैं भेदज्ञान–अश्वसे उतरकर आत्मज्ञानरूप शिवमतीके मोहमें भरा हुआ उसके निर्मल शुद्ध स्वभावरूप आंगनमें आता हूं और शांतताकी स्वरूपवती वेदिकाकी छायाके नीचे सुखासन पूर्वक विराजता हूं। मेरी भावी पटरानी मेरे दक्षिण भागमें आकर सुशोभित होती है। उसकी निर्मल दृष्टि मेरी भी निर्मल दृष्टिसे सर्व लज्जाको छोड़ ज्यों ही यकायक आकर भिड़ जाती है त्यों ही एक अतीन्द्रिय आनन्द–रसकी धारा हृदयमें बहने लग जाती है। शिवदेवी तत्काल मेरे कंठमें **स्वानुभवकी** सुन्दर पुष्प–माला क्षेपण करती है। शिवदेवीका पिता वीतराग–विज्ञानताका स्वामी चैतन्यप्रभु

और उसके सर्व सद्गुण सम्बन्धी मुझे अपनी कन्याके प्रदान करनेकी इच्छा प्रकाशित करते हैं । मैं परम शांतता और परम कोमलता-से इस अपूर्व लाभको ग्रहण करनेकी स्वीकारता देता हूं। वे फिर कहते हैं तुम मेरी कन्याको स्वधर्मसे प्रतिपालन करना। मैं इसके उत्तरमें स्वधर्मसे पालना स्वीकार करता हूं। सर्व सभागण आनन्दमें प्रफुल्लित हो शिव देवीके साथ मेरा लग्न होना योग्य समझकर श्री सिद्धात्मस्वरूपकी भाव पूजाका समारंभ और आरंभ कराते हैं । ऐसी पूजामें ध्यानाग्नि जलती है। कर्म ईंधनोंकी आहुति देकर होम होता है। अन्तमें उस निर्मल वेदिकाके मध्य विराजित परम सिद्धस्वरूपके चहुंओर सप्त अंतिम गुणस्थानरूप प्रदक्षिणाओंको करके वह शिव देवी आज मेरी पटरानी होती है। मैं उसको पाकर अत्यन्त मग्न हो गया हूं, मेरा स्वभाव उससे तन्मय हो गया है। मैं अपनी प्रिया शिवसुन्दरीके भोगका अनुपम विलास लेता हुआ सर्व क्षणिक आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**के परम विशाल सुस्वादको ग्रहण करता हूं।

दशलाक्षणिक धर्म।

(८)

दर्शन विशुद्धिधारी, अविकारी, निर्विघदशा–विस्तारी; परमपूज्य, परमेश्वर, आत्माराम विहारी, चैतन्य भूपति आज निज अनन्त गुण समूहरूप परिवारको साथ ले शुद्ध भावरूप जिन मंदिरमें प्रवेश

कर, श्रीपरमात्म देवका दर्शन प्राप्तकर आल्हादित हो गया है, जिसके तेजके सन्मुख अनंत कोटि सूर्य्य भी तिमिराच्छन्न भासते हैं। जिसकी शांत ज्योतिके सामने अनंत कोटि चन्द्र भी नक्षत्रवत् मंद-क्रान्ति प्रतिभाषित होते हैं, जिसकी निर्मलता और शुद्धताईके समक्ष स्फटिकमणि, मलरहित जल और सर्वार्थसिद्ध विमानवासी अहमिंद्रोंके शुक्ल लेश्यायुक्त परिणाम भी सम्मिलित मालूम होते हैं। ऐसे शांत, मनोज्ञ, परमोत्कृष्ट प्रभुके दर्शन प्राप्तकर आज यह संतृप्त हो गया है। दिगम्बर जैन मुद्रा उत्तमक्षमादि दशलक्षण–धर्मरूप आभरणोंसे सुशोभित, रत्नत्रय जड़ित एकाकार ज्ञानरूप मुकुटसे विराजित, शिव-रमणीरमणके रागरूप रक्त मुख–रन्ध्रसे उल्लसित, ज्ञान दर्शननिर्मल चक्षुओंसे दीप्तिमान् शुद्ध श्वेताम्बर मुद्रारूप ही प्रकाशित हो रही है। जिस मुद्राका मोही यह चैतन्य भूपति अभेद चिन्तामें पड़ समुद्र-कल्लोलवत् आचरण कर रहा है। इसका दृश्य दर्शकको अद्भुत आनन्द प्रदान कर रहा है। इसके स्वरूपके हतनेको अनंत कर्म-वर्गणाएं इसके निकट आती हैं, परन्तु यह क्रोधको न प्राप्त हो अपने आत्मरूप **उत्तम क्षमा** गुणमें तल्लीन है। अनंत अनुपम गुणोंका स्वामी होकर भी मान–कषायरहित, **परममार्दव** अधिकारी, जो कोई भावे, तिसे ही सुखकारी हो रहा है। अपनी सरलतामें तन्मय हो, कपटरहित, परवस्तु ग्रहणसे विरागी **आर्जवगुणधारी**, समता–विहारी हो रहा है। सत्यस्वभावधारी, असत्यता–निवारी, परम यथार्थ सम्य-क्तगुण–विराजित, नित्यसत्यता–प्रचारी, **सत्य**–अधिकारी हो रहा है। द्रव्य–भाव–मल–त्यागी, आत्मशुचितासों पागी, वीतरागी, निर्मल चैतन्य

सरित् स्नानकर्ता, परम **शौच्य** गुणसम्पन्न हो रहा है । अपनी शक्तियोंको परधर्मसे संकोच, परमार्गको मोच, निजधर्मको एकाकार तन्मयतामें धार उत्कृष्ट **संजमधर्म** प्रतिपालक हो रहा है । शुद्धोपयोग—अग्नि निज चहुंओर जला, निजआत्मको तपा, परतापरहित, स्वगुण अविरहित, **परमतप** धर्ममें तन्मय हो रहा है । भव-विकार-त्यागी, परमाणुसे विरागी, निजधन अनुरागी, आत्म विश्रामकारी, परम **त्याग** धर्ममें सावधान हो रहा है । षट्द्रव्य—लोक—ज्ञाता, निजद्रव्यमें विख्याता, निजनिज अपनाता, परम **आकिञ्चिन्य**पदधारी हो रहा है । परम ब्रह्मपद—भोगी, शिवनारिसे संयोगी, परथान-चरण-त्यागी निज ब्रह्म आचरणकारी, **ब्रह्मचर्य्य** धर्मानुयायी हो रहा है । ऐसे **दशधर्म**को संवारे चैतन्य भूपति **धर्ममूर्ति** ही प्रमाणित हो रहा है ।

दर्शक इस धर्ममूर्तिको देख अधर्मको भुला निजधर्ममें अनुरागी होकर चैतन्य भूपतिकी सेवा करनेको उद्यत हो गया है । जोकि थोड़ी देर पहिले विषय वासनाके क्षणमय सुखमें आनन्द मानता था और इच्छित विषयोंकी लालसामें संसार—भ्रमण करनेमें उत्साही था वही इस समय अनादि भूलको मिटा, निज स्वरूप—साध्यके निज आत्मज्ञान साधकको प्राप्तकर, स्वाधीन आनन्द—स्वादका रसिक हो अपनी पूर्ण रुचिके बलसे उपाधिजन्य आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का सम्यक् स्वाद ले रहा है ।

आगारी साधु ।

(९)

सप्तभयरहित, स्वकुलमानावलम्बी, स्वमर्य्याद–प्रवाही, स्वस्वभावानुरागी, सुधासमूह, आत्मसाधु आत्मव्यक्तताके साक्षात् साधनमें उन्मत्त हुआ, त्रिलोकको विस्मरण किये हुए मनोहर आत्मबागके भीतर रमन कर रहा है । मैं ज्ञाता, दृष्टा सत्यस्वरूप हूं; मैं कर्ता भोक्ता नहीं हूं; स्वरूपानन्दी मेरा इष्ट है । आत्मसाधुकी यही अविचल श्रद्धा, यही गाढ़ रुचि, यही सच्चा लोभ इस साधुका परमप्रिय मित्र **सम्यग्दर्शन** है । स्वरूपकी शुद्धता स्वस्वरूप परिणमनसे ही प्राप्त होती है, त्रिलोक प्रभु अविनाशी सिद्धात्मा मेरा ही वास्तविक रूप है । षट् द्रव्यमय लोकमें जीव द्रव्य उपादेय और अन्य ज्ञेय और हेय हैं। यही संशय, विमोह, विभ्रम रहित सच्चा ज्ञान मेरा प्रिय सहोदर **सम्यग्ज्ञान** है । इंद्रिय और अनिन्द्रय विषय वासनाओंसे दूरवर्ती काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, राग, द्वेष आदि विभावोंसे विलक्षण, एकाकार, सामान्य स्वसंवेदन ज्ञानमें तल्लीन, तथा परम पवित्र आत्म विशुद्धतामें मगन, स्वसमयावरोही ब्रह्म आचरण मेरा सद्गुरु **सम्यक् चारित्र** है । इस **रत्नत्रय** स्वरूप परम धर्मका संगी आत्मसाधु प्रफुल्लित वदन आत्मप्रभावनाके हेतु सर्व आत्माओंकी समाजमें उपस्थित हो क्रोधराक्षसकी विपक्षिणी उत्तम क्षमारूप परम सुन्दर देवीकी उपासनाकर समाजको एक गुणस्थानमें विराजमान कराय सर्वके साथ स्वसुधारस निर्मित अद्भुत पक्वान्न और मिष्टान्नका

भक्षणकर परम वात्सल्य और प्रभावनांगका वर्धक हो रहा है। इस प्रकारकी व्यावहारिक गार्हस्थ्य क्रिया इस दिगम्बर साधुको कैसे शोभती है यही एक आश्चर्य है। परन्तु जहां रत्नत्रय—ज्योतिका अनुपम प्रकाश है वहां कुछ आश्चर्य नहीं। वहां तो हर समय पराधीनतारहित स्वाधीन चिद्विलासका प्रसार है। मैं ऐसे आगारी और अनागारी साधुके दर्शनकर परम तृप्त हो गया हूं और एक बातकी बातमें उल्टे मार्गको छोड़ सीधे पथमें आ अनादि विस्मृत सर्वथा उपादेय **अनुभवानन्द**का स्वाद लेते हुए परम संतोषको प्राप्त हो गया हूं। आज मेरा दिन सच्ची **क्षमावनी**से परिपूर्ण है। जैसे मेरे अंतरंगमें परमोत्कृष्ट क्षमा है ऐसे सर्व जीवोंको उपलब्ध हो मेरी यह सच्ची दया भी मुझे **अनुभवानन्द** दिये विना रहती नहीं। धन्य है स्वस्वरूपका अनुभव! जो इसके मोही वे ही सच्चे मोही और आनन्दरूप हैं!!

बन-विहार।

(१०)

उत्तम संयमधारी, निर्जन स्थान-विहारी, स्वपरोपकार-कारी, परम सज्जन अंतरात्मा आज परमात्मबागकी सैर करता हुआ जो विचारता है तो अपनेको सर्वसे शून्य देखता है। विभावभावोंकी तरंग आती नहीं, आत्मरहित द्रव्योंकी परिणति समाती नहीं, तथा द्वैतभावकी रंचमात्र भी झलक दिखाती नहीं। ऐसी एकान्तताका अनुरागी अपनी सैरमें अद्भुत गुणोंका विकाश देख रहा है। कहीं अनंत ज्ञान है तो कहीं अनंत दर्शन है; कहीं अनंत वीर्य है तो

कहीं अनंत सुख है, कहीं क्षायक सम्यक्त्व है तौ कहीं परम धैर्य्य है; कहीं निराकुलता है तौ कहीं निरावलम्बत्व है; कहीं वीतरागता है तौ कहीं शिवनारिसे संयोगता है; कहीं अनंत लाभ है तौ कहीं अनंत भोग है; कहीं इन्द्रिय–भाव–वियोगता है तौ कहीं अतीन्द्रिय–भाव–प्रगटता है; कहीं जगत् विस्मर्णत्व है तौ कहीं जगत् स्मरणत्व है, कहीं त्रिलोकज्ञता है तौ कहीं त्रिलोक–शून्यत्व है;कहीं उत्तम दया है तौ कहीं उत्तम ब्रह्मचर्य्य है;कहीं उत्तम शौच है तौ कहीं उत्तम आकिञ्चिन्य है; कहीं परद्रव्य–रस–रहितता है तौ कहीं स्वद्रव्य–रस–प्रवाहिता है। इन गुणरूपी झाड़ोंकी शोभा और सुन्दर सुगन्धोंको लेता हुआ यह अंतरात्मा एक परम विस्तीर्ण निर्मल धर्म–ध्यानरूपी वृक्षकी छायामें विराजमान होता है। इस वृक्षके उत्तम मार्दव रूपी अत्यन्त कोमल और मनोहर पत्रोंका दृश्य इस अंतरात्माकी ज्ञान चक्षुओंको खूब ही तरावट कर रहा है। उत्तम सत्यकी सुगन्धित पवन इस वृक्षसे भेंट करके ज्यों २ इस अंतरात्माके मस्तिष्कको लगती है त्यों २ इसके अंतरंगमें विवेकका रुधिर निर्मल होता जाता है। भेद–विज्ञानके मनोहर पुष्प जिस समय वायुके संचारसे टूटकर इस अंतरात्माके ऊपर पड़ते हैं इसका सारा शरीर उसकी खुशबूसे महक जाता है। जब इस अंतरात्माको भूख–प्यास लगती है यह उसी समय इस वृक्षके स्वानुभवरूप फलको तोड़ लेता है और उसके अंदर भरे हुए सुधा-समूहका पानकर अपनी क्षुधा और तृषाको तृप्त करता है। इस सुधामें अपूर्व शक्ति है। इसका अमर रस अंतरात्माको परम पुष्ट करता है।

अंतरात्मा निरंतर ही इस वृक्षकी सेवा करते रहकर और स्वानुभव-रूपी फलोंके रसको चाटते रहकर जो आनन्द भोगता है वह कथनसे बाहर है; बड़े २ ज्ञानी भी जिस आनन्दकी व्याख्या नहीं कर सक्के हैं। धन्य है यह अंतरात्मा ! जो इस प्रकार वचनातीत सर्व क्षणमय आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है।

आत्मीक रामायण।

(११)

मोह–शत्रुके दुःखसे क्लेशित, असह्य वेदनामें इलाजरहित, अत्यन्त निरुपाय होनेपर भी उपाय करनेका इच्छुक, **आत्मा–राम** भव–वनमें भटकते भटकते एक उच्चस्थानको देखता है। ज्यों ही दृष्टि फैलाता है और क्षणभर विचार करता है, त्यों ही **धर्मोपदेश**रूप **सुग्रीव**के शान्तमुखको देख साता प्राप्त करता है और चित्तका शोक भूल एकाएक मिल जाता है। संभाषणका आनन्द लेते हुए **आत्माराम धर्मोपदेश**के मुखपर मलीनता जान उसका कारण श्रवणकर उसके शत्रु **मिथ्योपदेश**रूप साहसगत नाम मायामई सुग्रीवको विजय करनेके लिये कमर कसता है। धर्मोपदेश और मिथ्योपदेश दोनोंका बाह्य एक रूप देख, परीक्षा लक्षणको दृष्टिमें रखते हुए आत्माराम और धर्मोपदेश दोनों मिथ्योपदेशको पराजय करते हैं। इस उपकारसे उपकृत हो **धर्मोपदेश** आत्मारामकी वियोगिनी **अनु-**

भूति—सीताका पता लगानेका उद्यम करता है और शीघ्र ही **श्रुति** नाम विद्याधरसे खबर पाता है कि, **मोह**—**रावण** अनुभूतिको चुरा ले गया है। पश्चात् धर्मोपदेश परम वीर, निर्भय, अद्भुत विद्याधारी संतोंके लिये परमकामदेव श्री **सम्यक्त**—हनूमान्से भेंट कराता है। सम्यक्त योद्धा आत्मारामसे इस प्रकार मिलता है जैसे दूधमें दूध मिलता है। दोनोंमें एकाग्र प्रीति होती है। अपने मित्रकी वियोगिनी अनुभूति रानीसे मिलानेका प्रणकर **सम्यक्त** तय्यार होता है। और अपनी अपूर्व विद्याके बलसे शीघ्रही देख लेता है कि, उस अनुभूतिरानीको मोह—रावण कलंकित करना चाहता है। परन्तु परमसती, आत्माराममें आशक्त अनुभूति मोहके बिछाए हुए माया जालोंमें नहीं फंसकर आत्मारामके नाम और गुणोंको स्मरण करती हुई अपने शीलकी रक्षा कर रही है। शीघ्र ही सम्यक्त—हनुमान् अनुभूतिसे मिलते हैं और आत्मारामकी खबर सुनाते हैं और विश्वासार्थ आत्मारामकी **विवेक**—**मुद्रिका** प्रदान करते हैं। इस सुखसम्वादरूपी अमृतको पाकर अनुभूतिके अंगका प्रदेश हर्षांकुरसे अंकुरित हो जाता है। अनुभूति अपने **भेदविज्ञान**—**चूड़ामणि** देकर शीघ्र सम्यक्तको आत्मारामके पास भेजती है। आत्माराम अपने सम्यक्त—मित्र द्वारा अपनी प्रिया अनुभूतिकी खबर पाकर परमानंदित होते हैं और परम साहस कर अपनी अनुभूतिको ग्रहण करनेके लिये तय्यार हो जाते हैं। धर्मोपदेश और सम्यक्त दशलक्षणरूप सेनापतियोंको आज्ञा देते हैं कि, वे अपनी २ चमत्कारिक गुण रूप सेनाको कार्य्य—क्षेत्रमें परिणत होनेकी आज्ञा देवें। सर्व सेना एकत्र होती है। **सम्यग्ज्ञान** मुख्य सेनापति सर्वको

योग्य चक्रमें सज्जित करता है। **सोऽहं**के युद्धवाजित्र बजते हैं और सेना एकाएक मोहके बाह्य मनोहर, अभ्यंतर महाभयानक औगुणोंसे भरपूर **विषयपुर** रूप **लंका नगर**के बाहर आ उपस्थित होती है। सोऽहंकी स्याद्वादमय गर्जनाको श्रवणकर मोह एकाएक कांप उठता है और तब साहस बांध युद्धकी तय्यारी करता है। मोह-रावणका भाई **शुभोपयोग** रूप **विभीषण** अपने भाईको समझाता है कि, अनुभूति आत्मारामको दे दी जाय। परन्तु मोहके मोहांन्ध आग्रहको देख शुभोपयोग ऐसे कुसंगको तजना योग्य समझ शीघ्र आत्मारामके चरणोंमें लोटता है और आत्मारामकी प्रियतमाको आत्मारामको दिलानेवाले न्यायरूप कार्य्यमें परिणमन करनेकी चेष्टा कर: आत्मारामको पूरी २ सहायता करता है। मोह रावण अपने भ्राता **अशुभोपयोगरूप कुंभकरण** और **राग-द्वेष** रूप **इंद्रजीत** और **मेघनाद** पुत्रोंसे सलाहकर **चार कषायरूप** प्रचंड **सेनापतियोंको** आज्ञा देता है कि, सर्व औगुणोंकी सेना तैयार की जाय। **मिथ्याज्ञानरूप** सेनाधिपति सर्वको चक्रमें सज्जितकर युद्ध-क्षेत्रमें आजाता है।

मोह-रावण और **आत्मा-राम**का युद्ध होता है। कभी औगुणोंकी, कभी गुणोंकी हार होती है। दोनों तरफके योद्धा एकाग्रचित्त हो युद्ध करते हैं। सत्यपथानुयायी आत्मा-रामका साहस बढ़ता जाता है। अन्याय-मार्गी मोह-रावण अपनी सेनाको दबी देख साहसहीन होता जाता है। आत्मारामकी सहोदर **संयमरूप लक्ष्मण** भाई अपने

अद्भुत पराक्रमके बलसे, मोह—रावणका सामना करता है। इतनेमें मोहने **मिथ्याचरित्ररूप** चक्र संयमके घात करनेको भेजा, परंतु संयमके तेज और प्रभावसे उसी समय **सम्यक्चारित्ररूप** परम प्रचंड **सुदर्शनचक्रने** मिथ्याचारित्रके खंड २ कर डाले और संयमकी प्रदक्षिणा दे संयमके हस्तमें जा विराजा। संयमने अपने सर्वोत्कृष्ट सम्यक्चारित्ररूप चक्रको एकाग्रतारूपी झपटके साथ मोहके ऊपर ज्योंही फेंका, मोह—रावणका उरस्थल भिद गया और वह अचेत हो भूमिमें गिर पड़ा। मोहका गिरना और प्राणरहित होना था कि मोहकी सम्पूर्ण सेना भाग गई और परम उदासी छागई।

आत्माराम अपने मित्र **धर्मोपदेश, सम्यक्त** और **शुभोपयोगकी** सहायतासे और अपने सच्चे भ्राता **संयमके** उद्योगसे **मोहको** नाशकर अपनी प्रिया **स्वानुभूतिको** प्राप्त करते हुए। **अनुभूति** और **आत्माराम** दोनोंके मिलापका जो आनन्द है वह या तो श्री सर्वज्ञ भगवान् जानते हैं या वे अनुभव भोक्ता जानते हैं। आत्माराम अपनी स्वानुभूति पटरानीके प्रेममें तल्लीन हो सदास्वस्थ और बाधारहित शिवमहलमें आकर विश्राम करता है और अपने अटूट प्रेमसे उत्पन्न सुधा—समूहका पानकर सांसारिक, पराधीन और क्षणिक आनन्दोंसे विलक्षण अतीन्द्रिय, स्वाधीन और अविनाशी **अनुभवानन्दका** स्वाद लेता है।

स्ववस्तु–वाटिका ।

(१२)

जैनधर्मावरोही, परम-कला-विस्तारक, निजवीरत्व-प्रकाशक, स्वगुणमननकारक, अष्टाङ्गगुण विभूषित, सम्यक्दृष्टी आत्मा जिस उपयोगसे मधुमच्छिकावत् अनेक जातिकी नानावर्ण रूप वस्तुसमूह पुष्प वाटिकाओंकी सुगन्ध तथा रसको लेता फिरता था, उसी उपयोगको क्षणमात्रके लिये स्थिर कर स्ववस्तु वाटिकाके रमणमें लवलीन करता है तब इसे अपूर्व लाभ होता है। स्ववस्तु वाटिका असंख्यात प्रदेशवाली है। एक २ प्रदेश सम्यग्ज्ञानरूप रससे भरपूर है । जिस रसमें खट्टा, मीठा, चरपरा, कषायला, तीखा आदि कोई रस नहीं है, न जिस रसमें लाल, हरा, पीला, काला, सफेद आदि कोई रंग है, जिस रसका स्पर्श किसी भी हस्त तथा किसी भी मुखसे नहीं हो सक्ता है, जिस रसमें न सुगन्ध है न दुर्गंध है; इसके सिवाय जिस रसकी उपादान शक्तिसे कोई शब्द भी उत्पन्न नहीं होता– ऐसे सम्यग्ज्ञानमई अपूर्व रससे भरे हुए आत्म–वाटिकाके अन्दर जो अपने आत्म–उपयोगको धारण करता है उसे उसी समय एक अनुपम स्वाद प्राप्त होता है, चराचर जगत्से सम्बन्ध छूट जाता है, वीतराग–विज्ञानताकी महिमा प्रगट हो जाती है। यद्यपि उपयोग विचलित हो परोपयोगमें चला जाता है, स्ववस्तु-वाटिकाको छोड़ परवस्तु भयानक बनमें भ्रमण कर जाता है, परन्तु यह धीरात्मा उसी समय उस उपयोगकी डोरको सम्हालकर स्ववस्तु–वाटिकामें लाता है और यहां इस वाटिकाके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अस्तित्व,

एकत्व, अनेकत्व, अनित्यत्व आदि सुगंधित वृक्षोंमें इसको रमण कराता है । एक २ वृक्षके भीतर उपयोगकी चढ़न उतरन करता है। यह चढ़न उतरनका समय इस उपयोगको परम सुखस्वाद दिलाता है। इस अभ्यासमें पड़ा हुआ उपयोग क्रम २ से ऐसा दृढ़ हो जाता है कि स्ववस्तु–वाटिकामें रमण करनेको ही इसको मज़ा मालूम-होता है। परवस्तु–वाटिकामें जो लाचारीवश उपयोग ले जाना भी पड़े तौ वह उपयोग वहां तल्लीनता नहीं करता, झट अपना प्रयोजन कर स्ववस्तु–वाटिकामें आजाता है।

इस प्रकारकी वृत्ति इस मनुष्य–देह–धारीको भी सिद्ध सुखकी झलक दिलाती है और परानुभवकी वासनाको त्याग करा स्वानुभवरूप रसआनन्दको प्राप्त कराती है। जो व्यक्ति पूर्व इस व्यवस्थाके परनिमित्तमें सुख मानता था वह व्यक्ति अब स्वानुभवके आनन्दमें तल्लीन हो जाता है।

दोहा–महिमा भेद–विज्ञानकी, है अनुपम अविकार।
जो याको निश्चय करै, पहुंचे अनुभव–द्वार।

सम्यक्तीकी अपूर्व सामायक।

(१३)

पंचलब्धिविजयी आत्मा अनादि भ्रमणसे थककर और भव–वनमें किसी भी स्थलपर सुखशांति नहीं प्राप्तकर अपने ऊपर पड़ती हुई आपत्तियोंके सामर्थ्यसे यथार्थ निश्चयकर विचारता है कि मैं एक स्वतंत्र-ज्ञान-स्वभावधारी, अविनाशी–अनंत–गुणसमूहरूप एक आत्मा-

वस्तु हूं। मेरा सम्बन्ध उपाधिजन्य राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विभावोंसे नहीं और न पुद्गलमई उपाधियोंसे है। द्रव्यकर्म और नोकर्म मेरे स्वभावसे भिन्न हैं। मैं वास्तवमें अमूर्त चैतन्य-गुण-समूह हूं। शुद्ध चैतन्यतामें स्थिर रहना मेरा कार्य्य है। पंचइन्द्रीके विषय और विषयोत्पादक पदार्थ मेरे अहितकारी हैं। जब मेरी परिणति इन्द्री-ग्रामोंके किसी भी कोनेमें जाती है, मेरे निज स्वरूपाचरणका घात होता है। मैं एक आनन्द धामसे पतित हो दुःखके स्थानपर पहुंच जाता हूं। मेरे उपयोगमें इस जगत्के मायारूप प्रपंचका राग कदापि उत्पन्न न हो-यही मेरी भावना है। मुझे पूर्ण निश्चय है कि यह शरीर-सराय, जिसमें मैं अब वास कर रहा हूं, मुझसे छूटनेवाली है और इसीके साथमें इस तन-सम्बन्धी सर्व सम्बन्धी भी छूट जावेंगे। मुझे इसलिये व्यवहार-मार्गमें ऐसे कार्य्य नहीं करने जिनसे परजीवोंको संक्लेश हो, परके प्राणोंको पीड़ा हो। अन्यायरूप आचरण मेरेसे होना आश्चर्यरूप है। मैं तो निश्चय समझ चुका हूं कि-यह सर्व सम्बन्ध क्षणिक है। जबतक है तबतक इसकी रक्षा स्वधर्मावरोहणके हेतु न्याय-मार्ग-द्वारा ही कर्तव्य है। मैंने वस्तुके सम्यक् स्वरूपको जाना है। जो मेरा ज्ञान अज्ञानरूप था-वह सुज्ञानरूप हो गया है। जो मेरी परि-णति रागरूप थी-वह विरागरूप हो गई। और ऐसा होना ही चाहिए, क्योंकि श्रीअमृतचंद्र आचार्य्यके वचन हैं "**सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्तिः**" मेरे परिणामोंकी चढ़न विद्यमान है। निश्चयसे मैं चारित्रवान् होनेवाला हूं। मेरी परिणति

उसी ओर मुझे प्रेरित कर रही है, मुझे उत्कट आकांक्षा है कि, मैं निज आत्मीकरसका स्वाद सदा लेता रहूं—यही मेरा परम सुखरूप भोग है। मैंने अभी मार्गको पहिचाना है, मुझे उस मार्गपर चलना है। विना चले मुझे स्वतंत्रता नहीं, मुझे अद्भुत स्वाधीनता नहीं। यदि कोई ऐसा माने कि मैंने आपा—परको पहिचान लिया है, मैं स्वधाममें पहुंच गया, मुझे अब मार्गपर चलनेका विकल्प क्यों करना; तौ वह स्वमार्ग—ज्ञानसे विमुख है। उसका अभिमान उसे सम्यग्ज्ञानी और वैरागी नहीं बनाता है। जो अभिमानके वशीभूत हो अपनेको निर्बंध मानके आचरण करते हैं, वे सम्यक्तरहित हैं, जैसा कि श्रीअमृतचंद्र आचार्य्य इस श्लोकमें कहते हैं।

" सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातुबंधो न मे स्यादित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोऽप्याचरन्तु। आलम्ब्य तां समिति परतां ते यतोऽद्यापि पापा। आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्वरिक्ताः॥ "

मेरी भावना मुझे ऐसा नहीं बनाएगी—यह मुझे पूरी खातरी है। क्योंकि यद्यपि मुझे भासमान होता है कि मैंने स्वरूपाचरणको ही उपादेय माना और श्रद्धान किया है तथापि मैं निश्चयका स्तंभ नहीं गाड़ सक्ता कि मैं सम्यग्दृष्टी हूं ही। मैं सम्यक्ती हूं या मिथ्यादृष्टी-यह बात निश्चयपूर्वक अर्हत भगवान ही जानते हैं। मैं छद्मस्थ पराश्रित ज्ञानावलम्बी कैसे समझ सक्ता हूं कि मेरे ऐसा कौनसा सूक्ष्म अंश मिथ्या शल्यका विद्यमान है, जिससे मैं सम्यक्तीसा दीखता संता भी सम्यक्ती न रहूं। जो कुछ भी हो इस समय मुझे मेरा उपयोग आत्मगुणोंके सन्मुख कर रहा है, यही मुझे बड़ा

भारी लाभ है। जो रस कभी नहीं अनुभवमें आया था वह रस स्वादमें आ रहा है—यही मेरी स्थिरता जितनी देर तककी है उतनी देरके लिये मेरा अपूर्व सामयिक है। मैं राग—द्वेषसे दूर शुद्ध समता—सखीके रागमें उन्मत्त हो गया हूं। यही मेरी क्षणिक समवृत्ति मेरी ध्रुव समवृत्तिके लिये साधन है। यही कारण है और मेरी सर्व विमुक्त शान्त चिन्मय अवस्था मेरा कार्य्य है। जो आनन्द कारणके प्रयोगमें है वही आनन्द कार्य्यमें भी होगा। आज परमात्माकी कृपासे भवनिमज्जनकारी आनन्दोंसे दूरवर्ती और विजातीय अनुभवानन्दको लेता हुआ मैं कृतकृत्य हो रहा हूं।

आत्मीक बाह्यत्म्य और अद्भुत कषाय।

(१४)

शिव—महलमें विराजनेवाली, स्वस्वरूपमानमें लवलीन, त्रिजग ऊपर अपना आसन रखनेवाली, निराली छटाको विस्तारनेवाली मुक्ति—स्त्रीके नेहमें आशक्त हो एक संसारी व्यवहारी धन, धान्य, पुत्र, कलित्र, मकान, मंदिरको छोड़ एकान्तमें जा अपनी प्रियतमासे मिलनेकी भावनामें लीन हो सर्व पर भावनाओंको टालता है और यह विचारकर कि तपसे ही राज्य मिलता है आप एकचित्त हो शिवतियाके स्वराज्यको लेनेकी इच्छासे अनेक कष्टोंको सहकर तप करनेके लिये उद्यत हो जाता है। अनशन तपारोही होकर अपने आत्माको किसी भी परभाव, परगुण, परपर्याय और परद्रव्यका भोजन नहीं कराता है। उसे

बिलकुल स्वभाव अवरोही रखकर अनशन तपमें जबतक दृढ़ रखता है तबतक परमानंदकी भावना करता है; स्वावलंबके मनोहर फलको प्राप्त करता है। अनशन तपसे थककर **ऊनोदर** तपके लिये जब उद्यम करता है तब अध्यात्मिक निश्चय व्यवहारनय संबंधी विचारोंका कुछ भोजन अपनी आत्माको इसलिये कराता है कि, यह आत्मा स्वात्मस्तंभवत् रहकर अनशन तपको विना किसी ओर डगमगाए पालन कर सके। यह तप भी इस आत्माको शिवरमणीके स्वादको दिलाकर और अधिक उत्साही और मुक्ति-प्रेमाशक्त करता है। जब यह आशक्तचित्त **वृतपरिसंख्यान** तप करता है, तब प्रतिज्ञा कर बैठता है कि, मैं अपने आत्माको ऐसा ही भोजन खिलाऊंगा, जो शुद्धनय निर्मित सत्पात्रमें रक्खा हो, और ज्ञान-वैराग्य-मिष्टान्नसे निर्मित हो। इस प्रतिज्ञाको धारणकर स्वरूप संतोषको कभी विस्मरण नहीं करता है। लोभ राक्षससे सर्वथा दूरवर्ती शिवरमणीका लोलुपी इस वृतसंख्यान तपके द्वारा कष्ट सहनेको आनन्दका भोग मानता जाता है। तीसरे तपकी भावनासे उपयोगको हटा जब **रसपरित्यागनामा** चौथे तपकी ओर दौड़ता है तो यही निश्चय कर लेता है कि मैं किसी पुद्गलके खट्टे, मीठे, चरपरे, कषायले, तीखे और कडुवे रसके स्वादको लेनेका नहीं; न मैं दूध, घी, शक्कर, दही, तेल और नमकके स्वादको लूंगा तथा मैं धर्म, अधर्म, आकाश और कालके भी किसी विलक्षण जातिके स्वादको न लूंगा और सर्व पररसोंसे अतीत स्वस्वरूप रसका ही पान करूंगा। यह रस मेरे अंगको

जितनी तृप्तता देता है उतनी तृप्तता किसी भी द्रव्यके किसी भी रसमें नहीं है। यह तप मुझे मुक्ति-तियाकी लब्धिके उद्यममें अधिक अधिक प्रेरणा करता है। इस तपके तपनेमें सहजानन्द है, कष्टका नाम तक नहीं। जब अपने उपयोगको **विविक्तशय्यासन** नाम पांचवें तपमें लेजाता है तब सर्व **प्रमाद**की शय्या और **मोह**के आसनोंको त्याग देता है और इनसे दूरवर्ती होकर असंख्यात प्रदेशवाली निजात्म–शय्या और निजभावके दृढ़ आसन-पर बैठनेका संकल्प कर लेता है। यह अद्भुत शय्या और आसन इस आत्माके तनको जो आराम देते हैं वह आराम सिवाय शिव-लोकके अन्यत्र नहीं है। यह मुक्ति-तियाशक्त प्राणी इस प्रेममें इस पांचवें तपके द्वारा कुछ भी कष्ट न पा अद्भुत साताकी प्राप्ति करता है और आल्हादित हो इस साहसको बढ़ाता जाता है कि मैं अवश्य शिवरमणीका वर होऊंगा।

छठे **कायक्लेश**नामा तपके संगममें जब यह लोभी जीव आजाता है तब यह संकल्प कर लेता है कि मैं अपनी चैतन्य कायको स्थिर, दृढ़ और ऐसा तल्लीन रक्खूंगा कि उसपर लोकके चेतन और अचेतन पदार्थ चाहे जितनी औपाधिक भावोंकी वर्षा करें व औपाधिक द्रव्योंका संघट्ट करावें, परन्तु यह आत्मा अपनी कायको किंचित् भी चलायमान न करेगा। इस आश्चर्य्यमई कायक्लेशको करते आत्माको वास्तवमें कोई क्लेश नहीं, किन्तु सर्वथा आनन्द है। क्लेश तो उसी वक्त होता है जब कोई किसीके स्वभावको बिगाड़े। जब मेरे स्वभावको पतन करानेको किसीमें सामर्थ्य नहीं, तब मैं अपने

स्वरूपकी दृढ़तामें सिवाय आनन्दके कभी कोई क्लेश पानेका नहीं हूं। धन्य हैं ये छः**तप** ! इनकी सहायता मुझे परम सन्तोषित और पुष्ट कर रही है। वास्तवमें यह बाह्य तप तप ही कहलानेके योग्य हैं, क्योंकि जहांतक संकल्प सहित विचार हैं वहांतक निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान नहीं । निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान ही साक्षात् अंतरंग भाव है । परन्तु जबतक इस भावकी प्राप्ति नहीं तबतक मुझे इन छः बाह्य तपोंको अवश्य निरन्तर तपना चाहिये । यद्यपि इनका संयोग मुझे निर्नाम नहीं बनाता, मुझे गुणस्थानोंसे अतीत नहीं रखता, किन्तु मुझे षट् गुणस्थानवर्ती रखकर संज्वलन कषायावरोही साधुके नाममें गुंठित रखता है सो सत्य ही है । मेरेमें इतना **लोभ** है कि, मैं तीन लोक–विजयी शिव–तियाके राज्यको पाऊं। मेरेमें इतना **क्रोध** है कि मैं स्वस्वरूप मग्न ध्यानाग्निसे पुद्गलीक कर्मवर्गणाओंको दग्ध करूं । मेरेमें इतना **मान** है कि मैं अपनेको सिद्ध समान सर्वोत्कृष्ट पवित्रात्मा समझता रहूं। मैं इस मानमें अपनी वर्तमान सांसारिक अवस्थाको भूल जाता हूं। मेरेमें इतनी **माया** है कि सिद्ध और अर्हंत पदके अयोग्य ऐसे शुद्ध संकल्पोंको करते हुए भी मैं ऐसा ही मानता हूं कि मैं स्वयं सिद्ध तथा अर्हंतवत् आचरण कर रहा हूं । मेरी मानता कुछ है और आचरण कुछ है–यही मेरी **माया** है । इन चार कषायोंका संगी होकर मैं निसंगी कैसे कहला सक्ता हूं? यद्यपि ऐसा है तथापि मैं मुक्ति-तियामें आशक्त होकर सर्व सांसारिक और विनाशीक आनन्दोंसे करोड़ों कोस दूरवर्ती **अनुभवानन्दका** ही स्वाद लेता हूं।

अध्यात्मीक अंतरंग तप।

(१९)

निजसत्वविलासी, परभावसे उदासी, सम्यग्दृष्टी, यथार्थ मोक्ष, मोक्षसुख और मोक्षके कारणका ज्ञाता, स्वरसस्वाद लेनेका उत्सुक, षष्ठम सप्तम गुणस्थानावरोही, विषयसुखको भवभव बाधाकारी, अनुपम गाढ़ विष सम श्रद्धा करनेवाला अंतरात्मा आज अंतरंग तप तपनेमें तल्लीन हो रहा है। शुद्धात्म वृत्तिका धारण ही शुद्ध चारित्र है। इस स्वरूपाचरण अनुभवसे जब इसकी वृत्ति हटकर और इतस्ततः डगमगाकर परानुभवमें प्रवृत्त कर जाती है, तब यह अंतरात्मा अपना बड़ा भारी अपराध समझ शुद्धात्म स्वरूपमें दृढ़तासे आचरण करनेवाले आचार्योंकी अज्ञानुसार स्ववृत्तिको बलात्कार परसे फेर स्वमें स्थिरकर **प्रायश्चित्त** नाम अंतरंग तपका मनन करता है।

शुद्धात्म स्वरूप ही उपादेय है—ऐसी दृढ़ रुचि **सम्यग्दर्शन** है। स्वसंवेदन ज्ञान ही **सम्यग्ज्ञान** है। निर्विकल्प वीतराग स्वरूपानुभव ही **सम्यग्चारित्र** है। ये तीन होनेपर भी एक हैं। मेरा ही आत्मा इन तीन स्वरूप है। जहां निर्विकल्पता है वहां यह आत्मा अपने स्वरूपानुभवमें ठहरा हुआ परम आनन्द भोगता है। यह अंतरात्मा इस प्रकार त्रिमूर्ति—स्वरूप ब्रह्म—पदका पूर्ण सत्कार करता हुआ निरन्तर स्वरुचिके विषयस्वरूपरत्नत्रय रूप स्वबोधिको अपने अंतरंग समाधि-पुटमें अत्यन्त रुचिसे रखनेका उद्यम करता है और इसी कारण जिन २ महात्माओंने इस बोधिका सेवन कर स्वकल्याण किया है

उनकी ओर भी परम रुचिभाव धारण करता है। इस तरह अंतरंग **विनय** तपका अभ्यास कर सुखी होता है। स्वरूप मनन करने वाले साधु समाजकी स्थिरतारूप परमभक्ति सहित बाह्य वैय्यावृत्यको आवश्यक्तानुसार करते हुए भी अंतरंग वैय्यावृत्यको नहीं भूलता है। वीतराग विज्ञानता ही मोक्ष साधक है, इस भावपर दृढ़तासे आरूढ़ होते हुए भी जब किसी कारणवश इस भावसे उपयोग डगमगाता है तब यह अंतरात्मा शीघ्र सचेत हो निजउपयोगकी सेवा श्रुतज्ञान द्वारा करता हुआ मोक्ष—साधक भावको स्थिर करते हुए **वैय्यावृत्य**—तपमें प्रवीणता प्राप्त करता है।

अनादि कालपर अध्ययनकी खोटी टेवका तिरस्कार करके भेदज्ञानके द्वारा उन अविनाशी षट् द्रव्योंके गुण और पर्यायोंका विचार कर कि, जिनसे यह त्रिलोक अनादि कालसे अपना नाना प्रकारका रूप दिखला रहा है और अनंत काल तक दिखलाए जावेगा। यह अंतरात्मा अपने आत्मस्वरूपके शुद्ध जातीयत्वको आकर्षण करता है और एकाग्र चित्त हो रूपातीत ध्यानमें मग्न हो अपनी ही वस्तुका अध्ययनकर निश्चय **स्वाध्यायमें** लयता प्राप्त करता है। जब कभी परिणाम विचलित होते हैं तो शीघ्र ही जिनवाणीके मनोहर सूत्रोंका अध्ययनकर फिर अपने ही आसनमें अचल हो जाता है।

शरीर अशुचि और जड़ वस्तुओंसे निर्मित होकर और जड़ वस्तुओंसे पालित किये जानेपर अपने भीतर मल—समूहको अधिकतासे धारण करता हुआ नवद्वारोंसे मल ही को निकालता है तथा चैतन्य आत्माके संग हो करके भी कभी चेतन नहीं होता, अपने

जड़त्वको त्यागता नहीं है। बाह्य औदारिक शरीरके सिवाय तैजस और कार्माण शरीर, जो एक समयमात्र भी संसारी जीवका साथ नहीं छोड़ते, जड़ पुद्गलमय होकर चैतन्यकी संगति करते हुए भी जड़ ही रहते हैं। अंतरात्मा ऐसे शरीरोंके वास्तविक स्वरूपोंमें दृष्टि रख अपने अनादि भ्रमको टाल शरीरोंको अपनेसे सर्वथा भिन्न समझकर उनसे नेह त्यागता है और निर्मोह हो स्वरूपाचरणमें स्थिर होकर **व्युत्सर्ग** नाम तपका सम्यक् अभ्यास करता है।

पांच प्रकार अंतरंग तपोंको साधन रूप मानता हुआ अंतरात्मा निर्विकल्प समाधिके मध्यमें लीन होता है और सर्व जगत्से प्रयोजन छोड़ एकाग्र चित्त हो स्वानुभवरसास्वादको लेकर सर्वोत्कृष्ट **ध्यान** रूप महान तपको अंगीकारकर परमानंद भोगता है।

इस प्रकार उपर्युक्त षट् अंतरंग—तपोंमें सावधान, सम्यक् श्रद्धावान अंतरात्मा, जिस क्षणभंगुर सुखकी वासनामें अनादि काल खे चुका है, उस सुखको दुःख—बीज जान भवभ्रमणकारी आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है।

गुफामें विश्राम।

(१६)

ज्ञान—सूर्य्यकी प्रभा अनादि मिथ्या भ्रमको एक समयमें नाश कर देती है। इस श्रद्धाका रखनेवाला अंतरात्मा आज कुमति-

नारीको सदाके लिये त्यागकर सुमतिके रागमें रञ्जित हो गया है। मोहनीकर्मके द्वारा चढ़ा हुआ बिलकुल आपेको भुलानेवाला इस अंतरात्माका नशा उतर गया है। यद्यपि अभी इतना नशा विद्यमान है कि, जिससे अपने आपको न भूलता हुआ भी यह अंतरात्मा पर पदोंमें थोड़ी थोड़ी देरके लिये प्रीति कर लेता है, कभी द्वेष भी कर लेता है, तौ भी स्वस्वरूप अनुभवकी रुचिको लिये हुए है। ऐसा अंतरात्मा बहिरात्म—बुद्धिको त्याग परमात्मा होनेका इच्छुक सुमति—नारको संग लिये हुए परदेशमें अपनी क्षुधा तृप्ति होते न देख शिव—नगर नामक स्वदेशकी ओर प्रयाण करता है। रास्तेमें एक रमणीक बनमें आता है, जहां शुभभावनारूप बारह वृक्ष अत्यन्त मनोहर प्रचुर शांत छायाको विस्तारनेवाले शील सुगंधसे सारे बनको महंकानेवाले बहुत ही सघन भावरूप पत्रोंके भारसे नम्रीभूत अपनी छटाको विस्तार रहे हैं। उस बनके निकट ही एक सरोवर बहुत लम्बा चौड़ा चौकोंण अत्यंत उज्ज्वल, मिष्ट और अविकारी सम्यग्ज्ञानरूप सुधासे भरा हुआ मंद मंद लहरें ले रहा है। सरोवरके निकट ही एक अत्यन्त सुडौल और मनहरण स्वचारित्र नाम पर्वत है, जिसकी शोभाको देखते देखते अंतरात्मा पर्वतके निकट जा उस अनुपम गिरकी एक त्रिगुप्त रूप गुफामें जाता है और सुमतिनारीके साथमें बैठकर विश्राम लेता है। संसारके भ्रमण और इष्ट-वियोग अनिष्ट-संयोग रूप विकल्प तथा इंद्रिय विषयोंकी प्राप्तिमें उलझनरूप संकल्प आदि उपाधियोंके खेदसे दुःखी हो यह अंतरात्मा स्थिर चित्त करके विराजता है और अपने विवेकरूपी चाकरके द्वारा सरोवरका मिष्ट जल मंगा पान करता

है और यकायक सम्पूर्ण थकनको दूरकर स्वानुभवकी शांत निद्रामें शयन कर जाता है। इस शयनमें बेख़बरी नहीं है। इस शयनमें अचेतता नहीं है। यह शयन चैतन्यताकी चादरसे आच्छादित है। यहां निरानन्द नहीं, किन्तु सदा आनन्द है। इस गुफामें ठहरनेवाले अंतरात्माको न विषय-चोर सताते और न कषाय-लुटेरे व्याकुल कर सक्ते हैं। स्वदेश गमन करनेवाले व्यक्तिको ऐसी गुफाकी प्राप्ति परम सौभाग्यकी बात है। यह अंतरात्मा इस रमणीक स्थानमें विश्राम करता हुआ बाधाकारी आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्दका** स्वाद लेता है।

मिथ्यात्व गुणस्थानीकी दशा।

(१७)

निश्चय स्वपदभासी, निजदुर्गविलासी, जगत्प्रतिभासी एक पक्षी भवन भ्रमणमें पड़ा कमलनालरूप जगमें लटकता हुआ, तिसके त्यागमें अपना—नाश विचारता हुआ भ्रम—बुद्धिसे उसको स्वयं त्याग देनेकी निज शक्तिको विस्मरण किये हुए, उसको छोड़के जानेकी इच्छा रखते हुए भी नहीं छोड़ता है और वृथा ही विपर्ययरूप औंधा लटका हुआ अपने पांखोंको बार बार झटकारता है और अनेक त्रास पाता है। इस मिथ्याबुद्धिका धरैया चेतनपक्षी अपनी अनंत शक्तिको वृथा ही रख परके जालमें पड़ा विपत्तिग्रस्त हो रहा है। अपने निकट आनेवाले अन्य जीवरूप पक्षियोंको अपना हितुमान उनसे मोह करता

है और जब वे पक्षी अपनी २ पर्य्यायको पूर्ण कर चले जाते हैं, तब यह अत्यन्त विलापकर रोता है। बड़ी भारी भूल है कि, आप अनंत धनका धनी होनेपर भी अपनेको रंक, दरिद्री और दीन समझ रहा है। यह जगरूपी नाल जिसे पकड़े रहकर यह छोड़ता नहीं है, मात्र सर्वथा निर्बल जड़रूप है। यह कदापि इस पक्षीको पकड़ना नहीं चाहती, न कभी पकड़ती है और न पकड़े है। यही मूर्ख इसे पकड़ कर विपरीत बुद्धि हो रहा है। पांचों इंद्रियां और उनके विषयरूप पदार्थ सर्व जड़ हैं। वे जड़पदार्थ इस चेतनको बुलाते नहीं, इसे चाहते नहीं, इसे पकड़ते नहीं; परन्तु यह मूर्ख प्राणी स्वयं ही उनको पकड़ता है और उनके मोहमें लुब्ध हो जाता है। कोई पूछता है, क्यों भाई! इन जड़ वस्तुओंको क्यों पकड़ रक्खा है? अपना चेतन-धन अपने पास है, उसे क्यों नहीं ग्रहण करते हो? सुनकर यह गहला प्राणी उत्तर देता है कि, मैं क्या करूं यह विषय मुझे छोड़ते नहीं। २४ घंटे मेरे मनको त्यागते नहीं, मैं यद्यपि इन्हें त्यागना चाहता हूं और कभी एकान्तमें बैठ इनसे अलग भी रहना चाहता हूं और इसके लिये किसी इष्ट देवका नाम भी लेता हूं तब भी ये विषय मुझे छोड़ते नहीं। वहीं आकर मेरे मनको भ्रमाते और अपनी ओर खीच लेते हैं। मैं क्या करूं? लाचार हूं! इन विषयोंसे मैं हार गया!!

हाय! हाय!! बड़ा आश्चर्य्य है!!! यह मिथ्याती मोह मदिराका पीनेवाला अपना किया अपराध दूसरेके सिर डालता है। परवस्तुको

आप चुराकर चोर बनता है और कहता है परवस्तु ज़बरदस्ती मेरे पास आई है। ऐसी बावलेपनकी बात मानकर परका ग्रहण त्यागता नहीं। यह मिथ्यादृष्टी हीरेको कांच और कांचको हीरा समझ रहा है। जो देव, गुरु और शास्त्र भवदुःखोंसे रक्षितकर अनंत अविनाशी सुखके मार्गमें नेता हैं और स्वयं भवके औपाधिक भावोंसे पृथक हैं, उनको यह अपना हितकारी नहीं समझता है। जो देव, गुरु, और शास्त्र पंचेन्द्रिय विषयोंके मार्गमें लेजानेवाले और विषयोंका लोभ दिखानेवाले तथा स्वयं भी विषय–वासनामें लीन हैं, उन्हींको अपना हितकारी समझकर सेवन करता है।

हाय ! हाय !! कितनी बड़ी भूल है !!! आप चेतन होकर मृतपिंड जड़से सगाई करता है और इस सगाईके सहकारी झूठे देव, गुरु और शास्त्र और झूठे तत्त्वोंको अपना मानता है। और इस कारण अतृप्तिकारक इन्द्रिय–जनित सुखाभासोंको सुख कल्पकर उनकी तृष्णामें दिनरात बला करता है। अंतरंगमें अपने पास अटूट धन है, उसकी श्रद्धा करता नहीं, उसका ज्ञान करता नहीं, उसका मनन करता नहीं; जिस ओर एक क्षण मात्र भी दृष्टि हो जाय तौ यह अपूर्व धन अपना ऐसा अपूर्व स्वाद उस व्यक्तिको देता है कि वह फिर कभी उसको त्यागनेका नहीं। जो कभी अनादि भ्रमवश विमुख भी हो जाय तो कभी न कभी वह फिर निज धनको संम्हारे ही गा। खेद है, मोहमद मिथ्यातीको इसकी खबर नहीं।

नर, नारक, देव, तिर्यञ्च सर्व ही इस भ्रमबुद्धिमें उलटे लटक रहे हैं। अपनी २ जड़ देह, और उसमें बनी हुई इंन्द्रियोंमें लवलीन हो रहे हैं। तिस देहकी साता व असाता ही के ख्यालमें उस देहको छोड़ दूसरी देह धारते हैं। देहका नेह ही पुनः देहके होनेका कारण है। ऐसे देह–बुद्धि चहुंगतिके जीव निरन्तर तृष्णाकी आगमें जलते हैं और कभी भी निराकुल आनन्द नहीं पाते हैं। जो कोई संसारसे भयभीत हो इन्द्रिय सुखकी लालसाको दूर करना चाहता भी है, तौ एकान्त पक्षको पकड़कर यथार्थ निजस्वरूपको न जान मिथ्यादृष्टी ही रहता है। जबतक स्याद्वादकी कसौटीसे पदार्थोंका स्वरूप न जाने तबतक स्वनिधिको कैसे पावे? आप कौन और अपनी निधि कैसी? इसीकी यथार्थ समझ मिथ्याबुद्धिको तिरस्कार करनेवाली है। निज चैतन्यगुणका मंडार, दर्शनज्ञानका धारी, स्वसत्तामें नित्यता रखनेवाला, स्वाभाविक गुणोंसे अभिन्न, ऐसे आत्माका यथार्थ स्वरूपका प्रतिभाषना ही भ्रम बुद्धिको निर्मूल करनेवाला है।

जगके मोही जीवपक्षी मिथ्यात्व गुणस्थानमें भूले हुए अपना समय गंमाते हैं। कोई २ बाह्य चरित्रको अत्यन्त सुन्दर पाल आत्मज्ञान रत्नकणिकाके विना ग्रैवेयक तककी सैर कर आते हैं, परन्तु मिथ्यागुणस्थानको त्यागते नहीं।

यह गुणस्थान कुछ अपनेको पकड़े नहीं है। हम ही इसको पकड़कर बावले हो रहे हैं। यदि हम अपने पुरुषार्थको सम्हालें और कुमार्गसे राग त्याग सुमार्गपर आवें तथा एकान्तमें अथवा सुसंगतिमें

बैठ विचार करें तो हम अपने ही बलसे कदाचित् इस गुणस्थान-को त्यागनेके लिये सामर्थ्यवान हो जावें।

धन्य हैं! वे अनुभवी जीव जो इस गुणस्थानको उल्लंघकर चौथे-में जा पहुंचे हैं और वहां बैठकर इंद्रिय-सुखोंको जीर्ण तृणवत् सम-झते हुए अतीन्द्रिय सुखको सुख मानते हुए अपने निर्मल भावोंके बलसे विनाशीक आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का स्वाद लेकर अपने जातीयत्वका अनुभव करते हैं।

सासादन गुणस्थानीको बंदना।

(१८)

मैं निश्चयसे सिद्ध सदृश निर्मल परमात्मा हूं। यद्यपि व्यवहारमें भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्मकी गुफाओंके भीतर तिष्ठा हुआ अपनी शक्तिको व्यक्त नहीं कर सका हूं, परन्तु मेरी शक्तिको सिद्ध-वत् प्रकाशित बनाना और अपने अनंतसुखको प्राप्त करना मेरा अभीष्ट है। इससे मैं इस सम्यग्दृष्टिसे भरपूर हूं कि निज शुद्धात्मा ही उपादेय है तथा यह भी मुझे निश्चय है कि अनेकांतस्वरूप मेरा शुद्धात्मा अन्य सर्व परद्रव्योंसे भिन्न, अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य्यका धनी है। इसमें मुझे कुछ भी संशय नहीं है और न कुछ विपरीतता है तथा इस अपूर्व सम्यग्ज्ञानकी तरफ मेरा अनवध्य-वसाय (यह कुछ होगा) भी नहीं है। मुझे इसमें भी पूर्ण श्रद्धा है कि अपने शुद्धात्म स्वरूपका अनुभव अर्थात् सर्व पदार्थोंसे अपनी

वृत्तिको खींचकर अपने स्वरूपमें लीन करना, यही इस बातका उपाय है कि मैं तीनों गुफाओंसे बाहर हो जाऊं और अपूर्व तेजको प्रकाशित करता हुआ शुद्धात्मा रहूं। इस निश्चयका धारी उपशम सम्यग्दृष्टी अपनी अनादि अविद्याके वश जब कभी अनन्तानुबंधी कषायके वश हो जाता है कि, उसी समय सम्यक् श्रद्धासे पतित हो मिथ्यात्व गुणस्थानमें आने लगता है। मध्यमें अधिकसे अधिक छः आंवली (असंख्यात समयोंकी एक आंवली) और कमतीसे कमती एक समय ठहरकर **सासादन गुणस्थानमें** रहनेवाला कहलाता है। जिस समय सम्यक्तसे खिसकता है। इन्द्री विषयोंकी वह गहलता जो सम्यक्तमें नहीं थी पैदा होने लगती है। वह गहलता अनंतानुबंधी लोभके वश इसी निश्चयमें पटकने लगती है कि—विषय सुख ही सुख है, इसकी प्राप्ति करना ही उपादेय है। इन इन्द्रिय विषयोंकी गहलता चित्तमें कभी मायाको भी पैदा कर देती है, जिससे यह विचार आने लगता है कि परका विश्वासघात हो व परको हानि हो, हमको तो पर-वंचकतासे भी विषय-सुखकी प्राप्ति करनी चाहिये। बाह्य धर्म जो सम्यक्त गुणस्थानमें मोक्ष साधनके लिये करता था वही बाह्य धर्म अब मायाचार—रूप हो जाता है। कभी अनन्तानुबंधी मानकी तीव्रता हो जाती है। जिन आठ प्रकार मदोंको सम्यग्दृष्टी नहीं जड़ पकड़ने देता था, उन्हीं मदोंमें उन्मत्तता बढ़ने लग जाती है। अपनी जाति और अपने कुलके परिग्रहको विचार अभिमान करने लगता है। अपने रूपको सुन्दर देख मदकी वायुसे भरने लग जाता है। अपने बलको दूसरोंसे अधिक जान मानसे भरने लग जाता है।

अपने धनको इन्द्रिय-विषयोंका सहकारी जान अन्योंको निर्धन समझ आपेसे बाहर होने लग जाता है। अपनी आज्ञा यदि कुछ भी चलती हो तो उस अधिकारके कारण अपना बड़प्पन मानने लग जाता है। यदि व्याकरण छंद, अलंकार, कविता व अन्य किसी विद्यामें चतुर है तो उससे अपनेको बड़ा मान अविद्या-धारकोंको तुच्छ समझना शुरू करता है और आप विद्याके मदमें भरकर अपनी स्वाभाविक केवलज्ञान—विद्याको भूलने लग जाता है। यदि व्रत, उपवास, जप, तप और ध्यान विशेष रीतिसे करता है तो इसी मदमें लवलीन होने लगता है कि हमारे सदृश दूसरा कौन इतना कष्ट उठा सक्ता है? जो जप, तप आदि कषाय घटानेके साधन हैं, वे ही इस सासादन गुणस्थान वालेके अभिमान बढ़ानेके निमित्त कारण हो जाते हैं। इस गुणस्थानमें कभी २ अनन्तानुबंधी क्रोधकी तीव्रता भी सताती है, जिससे यह जीवात्मा इन्द्रिय-विषयोंमें विघ्नकारक चेतन तथा अचेतन पदार्थोंकी ओर क्रोधकी झलकमें डूबने लग जाता है। इस तरह ऊपर लिखे चारों कषायोंमेंसे एकका भी उदय आजानेसे यह जीवात्मा तुरन्त चौथी सीढ़ीसे पहलीपर आजाता है और मार्गमें जैसे वृक्षसे गिरता हुआ फल कुछ देर ठहरता है, उसी तरह यह सम्यग्दृष्टी बीचमें कुछ काल लगाता है, उस समय इसको सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं। जैसे सूर्य्य संध्याकालके समय अस्त होते हुए अपनी ज्योतिको मंदकर किंचित देर रक्तवर्णको दिखला तिमिराच्छन्न हो जाता है, उसी तरह यह जीवात्मा शुद्धात्मत्त्वको ही उपादेय माननेवाला अ-

पने अपूर्व प्रकाशसे गिरकर ऐसे घोर अंधकारमें आजाता है कि फिर अपनी वस्तुको भुला और सच्चे सुखके उपायसे विमुख हो अपदोंमें तृप्त होता हुआ आकुल व्याकुल रहता है और स्वप्नमें भी स्वपदका ख्याल नहीं करता है। यद्यपि यह परमानंद स्वाधीन रसके स्वाद पानेके अवसरसे च्युत हो जाता है, परन्तु इसकी वृत्ति अनादि घोरानुघोर मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा कुछ जुदी जातिकी रहती है। जिससे इसकी वृत्ति दूसरा अवसर कभी न कभी पाकर फिर चौथी सीढ़ीमें चढ़कर परमानंद--स्वादको लेती है। यह निश्चय है कि यह जीवात्मा चौथी सीढ़ीमें चढ़ेगा। यदि बहुतसे बहुत समय लगे तो उतने कालका आधा ही काल खर्च होगा जितना काल एक जीवको जगत्के समस्त पुद्गलोंको ग्रहण करते हुए बीत जाता है (अर्थात् अर्द्ध पुद्गल परावर्तन)। वास्तवमें यह पतन किया हुआ मिथ्यादृष्टी भी सराहनीय है। तथा यह कभी न कभी श्रीसाधु अरहंत और सिद्ध अवस्थाको अवश्य प्राप्त करेगा। इस अपेक्षासे उसी तरह नमस्कार करनेके योग्य है जैसे हम श्री श्रेणिक राजाके जीव भविष्य प्रथम तीर्थंकरको नमस्कार करते हैं। इस भव्यात्माने एक दफे शिवमंदिरकी झांकी कर ली है। वही आकर्षता इसको फिर अपनी ओर बुलाएगी, अवश्य बुलाएगी और क्रम क्रमसे शिवरूप बना देगी। हम इस समय इस त्रिलोकमें विराजित समस्त सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोंको निश्चयसे सिद्धात्मा अनुभवकर उनके रूपको अपनेमें जोड़ते हैं और समस्त इन्द्रियाधीन सुखाभासोंसे विलक्षण परम स्वाधीन अनुभवानन्दका स्वाद लेते हैं।

मिश्रगुणस्थानका दिखाव ।

(१९)

अपने पदमें आनन्द माननेवाला, स्वानुभूतिका कर्ता और भोक्ता, रागद्वेषादि परानुभूतिके कर्तृत्त्व और भोक्तृत्त्वसे पराङ्मुख समग्दृगात्मा अपने पासमें गुपचुप रहनेवाली सात (४ अनंतानुबन्धी और ३ प्रकार मिथ्यात्व) कर्म प्रकृतियोंको दबाए हुए आत्म-उपवनकी सैर करता है और जगत्के षट् द्रव्यमई प्रपंच जालमें नहीं फंसकर अपने द्रव्यके गुण और पर्यायोंको सर्वसे भिन्न अवलोकन करता है । एकान्त मननके रसमें भीगा हुआ रहकर कुछ विश्राम लेता है कि दर्शन मोहनीय कर्मकी **सम्यक्मिथ्यात्व**नामा कर्म-प्रकृति अपने बलसे उठ आती है और जहां केवल प्रकाश था वहां अपनी परछांई डाल मलीनता करती है, जिससे निर्मल प्रकाश धुंधला प्रकाश हो जाता है । जैसे बाल-सूर्य्यके निकलते समयका प्रकाश अथवा अस्ताचलपर पहुंचनेवाले सूर्य्यका प्रकाश थोड़ी देरके लिये तिमिरसे मिलकर धुंधला अर्थात् तम-मिश्रित हो जाता है, ऐसे ही इस सम्यग्दृष्टीकी परम रुचि मिथ्यात्वसे होने वाली अरुचिके साथ मिलकर एक भिन्न ही जातिकी अवस्थाको प्रगट करने लगती है । अहा ! जो ज्ञाता दृष्टा अभी अपनेको ज्ञाता दृष्टा ही मानता था, वही बातकी बातमें क्रोधादि परभावोंका कर्ता भी अपनेको मानने लगा। जो आत्मा अपने निश्चयमें दृढ़ था, वही एक समयके फेरसे ऐसे भ्रममें पड़ा कि अपनी शारीरिक पर्य्यायको भी उपादेय मानने लगा। जो भेद-ज्ञानी अपनी विवेक

बुद्धिसे इन्द्रियजनित सुखकी जातिको अतीन्द्रिय सुखानुभवकी जातिसे जुदा समझ चुका था, वही एक पलकके मारते ही क्षणभंगुर और दुःखबीज इन्द्रिय–सुखको भी सुख मानने लगा। यद्यपि प्रकाश अलग और अंधेरा अलग, दोनों एक साथ नहीं रह सक्ते; तैसे सम्यक्तके उज्ज्वल परिणाम अलग और मिथ्यात्वके मलीन परिणाम अलग, दोनों एक स्थानमें नहीं रह सक्ते। तौ भी सवेरे और सांझ दोनोंकी मिश्र अवस्था हो ही जाती है। ऐसे **मिश्रगुणस्थान** वाला अपने भावोंका वैसा ही स्वाद भोगता है जैसे कि, दही और खांडको मिलाकर खानेवाला स्वाद लेवै। इस गुणस्थानमें ठहरता बहुत ही थोड़ी देर है। या तो शीघ्र अंधेरेमें आकर मिथ्यात्वी होता या चट उजेलेमें जा सम्यक्ती होता है। इसमें जबतक रहता है तबतक किसी संयमको पालता नहीं, कोई आयु भी नहीं बांधता और न मरता है। और न इसको मारणान्तिक समुद्घात करना पड़ता है। ऐसी मध्य अवस्थाका भोगी भी बन्दनीक है। चाहे यह अंधकारमें पड़े, परन्तु अवश्य एक न एक दिन ऐसे प्रकाशमें थिर हो जायगा कि फिर इसको मध्यम स्थितिमें कभी भी आना नहीं होगा और यह यथार्थ ज्ञानी रहकर अपने संयम मित्रके साथ बातें करता हुआ मोक्ष–मार्गमें चलकर अपनी प्राणप्रिया शिव-नारीके ध्यानमें लीन होता हुआ अवश्य शिवरमणीके महलमें पहुंच जायगा और वहां अनिवार्य्य कालतक अपनी सुन्दरीसे कल्लोल करता हुआ **अनुभवानन्द**का स्वाद लेगा।

अविरतगुणस्थानीको निज-निधि-दर्शन ।

(२०)

चिदानंद राम अभिराम निजस्वरूपावगममें विलक्षण पदार्थोंके यथार्थ लक्षणोंका ज्ञाता स्वात्मावरोही रहकर अपनेको कृतकृत्य मान रहा है । जिसके आत्म-बागमें शुद्ध ज्ञानकी हरियाली चारों ओर दीख रही है । शुष्कता, मलीनता, कठोरता, कंटकताका नाम निशान भी नहीं है । ऐसे मनोहर बागमें निर्मल स्वरसपूर्ण परम शोभायमान सरोवरके तटपर अपनी गाढ़ रुचिरूप प्राणप्रियाके साथ सुखासनपर बैठा हुआ सरोवरमें उठती हुई निर्मल कल्लोलोंमें रंजायमान होता हुआ उस जलकी निर्मलतामें प्रदर्शित होनेवाले सन्मुखवर्ती अनेकानेक पदार्थोंके चित्रोंको जैसाका तैसा देख वीतरागी रहता है । ऐसे आत्माकी संपूर्ण वृत्ति जब स्वरूपानुभवमें तल्लीन हो जाती है, तब नय, निक्षेप आदि विकल्पोंका अभाव हो जाता है । परिणति शांत-रसमें ऐसी भीग जाती है कि उस आत्माके अनुभवमें आया हुआ समस्त संसारका आताप ठंडा पड़ जाता है । यह जीव अपने निर्मल **ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य**-स्वभावको ही अपना मुख्य धन मानता है । अपनेको सदा ज्ञाता दृष्टा, आनन्दमय और **सप्तभय** रहित अनुभव करता है । स्वप्नमें भी राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि भावोंका कर्ता बनता नहीं, भूलसे भी विषय लोलुपताका भोक्ता होता नहीं, अपने स्वभावमें राग और मोहकी स्निग्धताके अभावमें **आश्रव** और **बंध**की

परवाह करता नहीं । इस सम्यग्दृष्टीका स्वभाव स्वयं संवररूप है; सभी परद्रव्योंसे **निर्जरित** और **मुक्त** है । जब यथार्थतामें विराजित है तब सात तत्त्वों और नौ पदार्थोंके प्रपंच जालसे पृथक है, जुदा है, अत्यन्त विलक्षण है । इस स्वरूपके मोहमें मोहित हो मैं भी इस रूप अपनेको बनाता हूं और **चतुर्थगुणस्थान**वर्ती होकर अपनी गत पर्यायोंकी प्रणालीको अपने भ्रमका फल मानता हुआ, शुद्धाचरण और स्वयंसिद्धताको सर्वदा उपादेय निश्चय करता हुआ, उस ओर परम रुचि रखता हुआ, गृहस्थकी व्यवहारिक पौद्गलिक रचनामें चलता हुआ भी उस रचनासे अपनेको इसी तरह जुदा रखता हूं, जैसे जलमें रहता हुआ कमल जलको अपनेसे जुदा रखता है । मेरी अवस्था उस कैदीके समान हो जाती है, जिसके लिये कैदसे छूटना तय हो चुका है । अनंत संसारका कारण मिथ्यात्वकी सहकारी अनंतानुबन्धी कषायकी ४ प्रकृति और मिथ्यात्वकी तीनों प्रकृति । मेरी सत्तासे श्रीकेवली और श्रुतकेवलीकी पाद सेवाके प्रसादसे जब दूर हो जांयगी तब मैं **क्षायकसम्यक्त**का भोगी होकर अधिकसे अधिक ३३ सागर ८ वर्ष कम २ कोड़ पूर्व और एक अंतर्मूहूर्त पुद्गलको लाचारीवश इधरसे उधर करता हुआ अंतमें सिद्ध निरंजन परमात्मा हो जाऊंगा । यदि इन सातोंमेंसे छःके उपशम और एक सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्वके उदयसे **क्षयोपशम सम्यक्ती** होऊंगा तौ भी उत्कृष्ट ६६ सागर ही जड़के अखाड़ेमें कसरत करता हुआ मोक्ष–महलमें पहुंच जाऊंगा । यद्यपि इस दशामें मैं चल–मल–अगाढ़ रूप रहूंगा, तथापि अपनी

सम्यक्त भूमिका कभी त्याग नहीं करूंगा। परन्तु **उपशम सम्यक्त** मुझे एक अंतमुर्हूत ही स्वरूप निश्चयावलम्बी रखता हुआ फिर अपनी निर्मल परिणतिसे गिराकर मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र अथवा क्षयोपशम सम्यक्तमें रख देगा। तथापि जो एक दफे मैंने अपने भंडारके दर्शन कर लिये हैं तो गिरता, पड़ता, चढ़ता, उतरता, अवश्य मैं अपने भंडारको अपना ही बनाऊंगा और उसपर अचल अधिकार जमाकर परद्रव्य क्या, परद्रव्यकी सम्पूर्ण वासनाओंको दूर फेंक दूंगा। इस चौथे दर्जेकी जय हो, जिसमें आते ही यह जीव संसारसे अलग हो जाता है। जो जीव इस गुणस्थानमें ठहरते हैं वे अपनेको सिद्ध ही समझ लेते हैं। उनका स्वरूपानुभव उसी आनन्दको प्राप्त करता है, जो आनन्द सिद्ध परमात्माको है। ऐसे अद्भुत सुखका भोगी यह आत्मा मनुष्य-गतिमें क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रके कर्म करता हुआ पशु-अवस्थामें सिंह, व्याघ्र, बैल, बंदर, हाथीकी पर्यायमें जन्म बिताता हुआ नरकगतिमें नारकियों द्वारा निरंतर मार धाड़ सहता हुआ व देव-गतिमें इन्द्रिय-जनित सुखोंको भोगता हुआ भी अपने स्वरूपकी परमभक्तिसे च्युत होता नहीं; अपने आत्माको अपनी देह और पुद्गल विकार रागद्वेषादिकोंसे आकाशवत् जुदा मानता हुआ उसके अनंतगुणोंके भीतर रंजायमान होता है और अपनी शिवरमणीमें आशक्तता धारता हुआ तथा उसीके स्मरणमें अन्य जगत्को तुच्छ गिनता हुआ यह आत्मा **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है।

श्रावकका मोक्ष–महलमें प्रवेश।

(२१)

आनन्द-प्रदायिनी, साधु-मन-मोहन रूप-धारिणी, अप्रमाण शांत-कला–स्वामिनी, अद्भुत स्वरूपा नारिके रूपमें मोहित हो एक जीवात्मा उसके शांत सरोवर और सुगुण उपवनसहित **दस खने महल**-के द्वारपर आकर उस नारिसे मिलनेकी गाढ़ रुचिके कारण उद्यम-शील हो रहा है। वह परम प्राणप्यारी दस खने महलके शिखरपर विराजित है। जो कोई साहसकर महलके ऊपर तक चढ़ आ सक्ता है, वही इस नारिसे सम्मिलनका लाभ उठा सक्ता है। यह मोही शिव–नारिमें आशक्त–चित्त सांसारिक सर्व संयोगोंको हेय जानता हुआ तथा अपनी परिणतिमें वैराग्यकी क्रान्तिको विस्तारता हुआ इस महल-पर चढ़नेकी भावना करके अपना पग आगे बढ़ाता है। इस मह-लके खन बहुत बिकट और घुमाऊ बने हैं। जिसके सामनेसे **अप्र-त्याख्यानावरण कषाय** अपने बलके चलानेमें असमर्थ हो जाती है, वही इस महलके पहले खनमें जासक्ता है। इस महलके पहले खनके ११ भाग हैं। यह आशक्त मन क्रम क्रमसे चढ़नेका व्यापार करता है। कषाय–अंशोंकी ज्यों ज्यों घटन होती है, त्यों त्यों यह चढ़ता हुआ ११ विभागोंको तय करता है। ज्यों ज्यों यह चढ़ता जाता है, त्यों त्यों शिवनारिसे मिलनेकी आशाको बढ़ाता जाता है और त्यों त्यों शिवानंदकी गाढ़ रुचि आनन्द प्रदान करती जाती है।

अष्टमूलगुण–धारी और सप्तव्यसन–त्यागी होकर पंच परम आ-

त्मस्वरूप-अनुभव-कारकोंमें भक्ति रखता हुआ पहले भागको तय करता है। अतीचाररहित पंच अणुव्रत और सात शीलोंका अभ्यास करता हुआ दूसरे भागका भागी होता है। इस भागमें चलनेवाला गृहस्थ षट् प्रकार आजीविकाको साधकर तथा अर्थ और काम पुरुषार्थकी भले प्रकार सिद्धि करता हुआ सामायिक, देवपूजा और स्वाध्यायके द्वारा इन्द्रिय विषयरहित आनन्दका स्वाद भी लिया करता है। महामुनि तथा त्यागियोंकी भक्ति और वैय्यावृत्यमें हुलसायमान रह अपनी ज्ञान वैराग्य—शक्तिको बढ़ाता जाता है। तीसरे भागमें आकर त्रिकाल द्विघटिका समायिकका आरम्भकर आत्मीकरसको प्राप्त करता रहता है। जब चौथे भागमें जाता है, तब प्रतिपरवीमें उत्कृष्ठ १६ प्रहर गृह व्यापारारंभ त्याग शिवनारीका ध्यान किया करता है। पांचवेंमें आकर उदर-पोषणार्थ सचित्त-भोजन-पानसे विरक्त हो जाता है। छठेमें जब जाता है, दया—चित्त रात्रिको मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे चार प्रकार आहारका त्याग करता है। सातवें भागमें आकर जिस नारिको उदासीन वृत्तिसे भी अपने कषाय-अंशोंकी अधिकतासे सेवन करता था, उस नारिको भी अपनी शिवनारिकी अत्यन्त आशक्तताके कारण त्याग देता है और ब्रह्मानंदमें आचरण करनेके लिये ब्रह्मचारी हो जाता है। आठवें भागके मैदानमें आ, जिस आरम्भके कारण थोड़े समयके लिये ही स्वस्थ चित्त होता था, उस आरम्भको अपना विरोधी जान छोड़ देता है। नवमें भागमें परिग्रहकी गठड़ीको जुदाकर उसकी भी चिन्तासे रहित होता है। दसवें भागमें आ अपने मन, वचन,

कायसे किसी भी आरम्भिक क्रियामें सम्मति देना त्याग देता है। दसवीं मंजिल तयकर जब ग्यारहवें भागमें आता है, तब क्षुल्लक अथवा ऐलककी रीतिसे अपना जीवन विताता हुआ पहले खनमें रह अत्यन्त आनन्दित होता है और अपना अहोभाग्य मानता है कि धन्य हूं मैं, अब मैं अपनी प्राणप्यारीसे शीघ्र ही मिलूंगा। इस खनपर चढ़ना अति कठिन था। इस खनपर विश्रामकर पंचम-गुणस्थानवर्ती रह आगेके खनमें जानेको उत्साही रहता है। निश्चय-साधक व्यवहारका पूर्ण सन्मान करता हुआ शिवतियामें आ-शक्त, सम्यक्तधारी, स्वगुणविहारी जीवात्मा पहले खनकी अत्यन्त मनोहर शोभाको देखता है और हर समय अतीन्द्रिय आनन्दको उपादेय मानता हुआ उसीकी वासनामें दत्तचित्त रहता है। इस मोहीकी वृत्ति भी सांसारिक वृत्तिसे विलक्षण होती है। स्वात्मानुभवमें तल्लीनताकी रुचि बढ़ती जाती है। अपनी स्वरूप-शय्यापर शयन करता हुआ शिवनारिके ध्यानमें लीन होता हुआ, आत्मारामकी सैर करता हुआ, अपनी अंतरदृष्टिसे तीनों लोककी वस्तुओंसे अपना स्वभाव जुदा करता हुआ, यह अंतरात्मा अपने अनुपम हर्षके रंगमें उन्मत्त हो ऐसा बन जाता है, मानों अपने स्वरूपके बाहिर किसीको जानता ही नहीं। ऐसा जगत्से अंध, परन्तु स्वरूपका ज्ञाता, दृष्टा, सर्व बाह्य औपाधिक भावोंसे दूर रह, अपने निर्मल भावमें निजत्वको विस्तारता हुआ, स्वरूपावलम्बी रह **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है। धन्य है यह पुरुष! जो अपने पुरुषार्थके बलसे उच्चस्थानको प्राप्त कर लेता है। जो कोई व्यवहारी ऐसे स्वगुणस्वादीका हृदयतः आदर

करते हैं वे भी कालान्तरमें स्वरस-ग्राही होकर अनुभवानन्दका स्वाद लेवेंगे; इसमें कोई शंका नहीं, इसमें कोई विरोधी नहीं। श्रीपरमात्माकी अनोखी कृपासे यह **अनुभवानन्द** जयवन्त रहे, जिसके प्रथम खन सन्मुखी स्वादकी इच्छा चौथे गुणस्थानवर्ती देव, नारक, नर और पशु किया करते हैं। जो जीव इस अनुभवानन्दके रसके एक क्षण भी प्राप्त करते हैं वे धन्य हैं, वे सराहनीय हैं, वे प्रशंसनीय हैं।

प्रमत्तसंयमीकी आशक्तता।

(२२)

अनुभवानन्दका सागर, परमात्मस्वरूप शुद्धताका अवलम्बी, स्वगुण-समाधानी, आत्म-ज्ञानी, अभेद रत्नत्रयस्वरूप मैं हूं ऐसी मान्यताका प्रकाशी व्यवहार—पथमें अपने उपयोगका अधिक दुरुपयोग होता जान शांत वैराग्य आत्म—ज्ञान मिश्रित उपयोगके विघ्नकारक द्रव्य और भावपर्यायोंसे मोह हटा पांचवीं श्रेणीसे सातवींमें आता है। और जैसे अत्यन्त मिष्ट जलके इच्छुकको पहले उतना मिष्ट जल नहीं मिलता था, अब अपने अभिप्रायके अनुसार मिष्ट जलको पाकर उसको अत्यन्त अनुरागसे दिलभरके पीता है, फिर हट जाता है, वैसे ही यह अंतरात्मा अत्यन्त शुद्ध भावोंका इच्छुक जब सातवीं श्रेणीमें अपने अभिप्रायानुसार शुद्धभावोंका अवलम्ब पाता है तो अपनी शक्ति भर उन भावोंसे आत्म—रस पिये विना नहीं हटता है। शक्तिके अभावमें हटकर छठे **प्रमत्तगुणस्थानमें** आजाता है।

इस गुणस्थानवर्ती आत्माको गृह फंदके मोह–जालमें न फसानेवाले तथा रागकी रंगतसे दूर रखनेवाले बाह्य अनेक कारण विद्यमान हैं। शरीर भी यथाजात नग्न है। आकाश ही जिनके वस्त्र, शरीराच्छादक हैं। निर्मल भूमि, पाषाण–शिला तथा तृण–संस्तर मात्र ही जिनके शय्या और आसन हैं। वन–वृक्षोंके कोटर, तल, वनखंड, पर्वत–गुफा, एकान्त उपवन तथा जिन चैत्यालय ही जिनके बसनेके स्थान हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रहसे सर्वथा दूरवर्ती हैं। आत्म–मननको न भुलाते हुए भूमि निरखकर चलते, हितमित वचन बोलते, निर्दोष और निरन्तराय भोजन करते, पीछी, कमंडल, पुस्तकादिको निरीक्षणकर रखते, उठाते तथा मल मूत्र देख भालकर करते हैं। अपनी पांचों इन्द्रियोंको अपने काबूमें रख सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, बन्दना, स्तुति और कायोत्सर्ग–ऐसे छः आवश्यकोंको करते हुए एक बार बिना याचना किये खड़े २ अपने हस्तरूपी पात्रमें सदा भोजन करते हैं। स्नान दंत–मंजन आदि शृंगारके कारण विकल्पोंको त्याग जन–बस्तीसे अलग रह सदा शुद्धताके धारक आवश्यक्तानुसार स्वहस्तसे अपना केशलौंच करते हुए २८ मूलगुणको परम प्रीतिसे इसी कारण पालते हैं कि अपने अंतरंग निर्मल भावके विरोधी भावोंसे अपनी रक्षा हो।

ऐसे मूलगुण पालक निर्ग्रन्थ साधुकी वृत्ति परम आश्चर्य्यरूप है। कभी वह सिद्ध लोकमें जाता और कभी संसारके आंगनमें आ विराजता है। थोड़ी २ देर बाद ही चढ़न उतरन हुआ करती है। कभी यह साधु सातवीं सीढ़ीमें जा ध्यानस्थ हो जाता है। शक्ति हीनतासे

फिर छठीमें आ विराजता है। यद्यपि आहार, विहार, निहार, करता है, तथापि अपनेको कर्ता और भोक्ता न मानता हुआ रहता है। स्वस्वभावरूप शक्तिका धारी अपने स्वाभाविक परिणामोंका ही कर्ता और भोक्ता बनता है। यही निर्लिप्त परिणाम जाति इसे निर्जरा अधिक कराती है और कर्म-बंधसे बचाती है। यदि संज्वलन कषायवश बंध होता भी है, तौ वह शीघ्र छूटनेवाला निर्बंधके समान ही है। अपने शुद्ध वीतराग अभेद रत्नत्रयस्वरूप भावको ही अपने शुद्ध भावोंका साधक मानता हुआ यह साधु शरीर सम्बन्धी २२ परीषहोंको सहते हुए भी आनन्द मानता है। जनसमाजके कटुक वचन इसके आत्मीक उपयोगको भेदते नहीं। अज्ञानियों द्वारा प्रहार किये हुए शस्त्र, लोष्टादि यद्यपि इसके तनको छेदते हैं, परन्तु आत्मीक धर्मको विकारी बनाते नहीं। शिवनारीकी आशक्ततामें सर्व जगत्को भुलाए हुए लोगोंकी दृष्टिमें उन्मत्तसा दीखता हुआ परम साध्य भावका उद्यमी साधु निःशंक रह शिवनगरीकी ओर कदम बढ़ाए चला जाता है और सदा ही परम रुचिरूप सम्यक्तके बलसे स्वरूपाचरणमें तन्मय रह निज रसका स्वाद लेता हुआ पराधीन आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है।

अप्रमत्तविरतकी भावना।

(२३)

ज्ञानदीपको हृदय-करमें लिये हुए स्वस्वभावानुरागी जगत्के षट्द्रव्यमय प्रपंचोंमें भ्रमण करते हुए तथा निज जातीयत्वको सर्वसे

पृथक् अवलोकन करते हुए चैतन्य राजा भेद–ज्ञानकी अग्नि जलाकर अपनेको उस अग्निमें हर्ष पूर्वक डाल देता है और जैसे सुवर्ण अपने वाणिभेदके द्वारा अग्निमें दहते हुए समय २ अधिक २ शुद्धताको प्राप्त करता जाता है, उसी तरह यह चैतन्य राजा भी समय २ विशुद्धताकी वृद्धि करता हुआ स्वच्छताको प्राप्त करता है। आत्म-ज्ञानरूपी दर्पणमें अपने उज्ज्वल मुखकी उज्वलताईको देखता हुआ परम तृप्त रहता है। प्रमाद और आलस्यसे उपजनेवाली हतोत्साहिताका विध्वंशकर यह निःप्रमादी आत्मा स्वरूपानुभवमें निश्चल रहता है। वीतराग स्वसंवेदनरूप भेदज्ञान–जनित समाधिमें स्थित होकर शुद्धात्माकी भावना करता है। परम सामयिकका लाभ लेता हुआ द्रव्य सामायिकके यत्नसे बेखबर है। धर्मध्यानकी उत्कृष्ट अवस्था इस सप्तम गुणस्थानवर्ती साधुके निकट विद्यमान है। यद्यपि संज्वलन कषायके उदयके आधीन है तथापि वह कषाय इसके ध्यानमें विघ्नकारक नहीं है। यह साधु इस निर्मल ध्यानके बलसे क्षपकश्रेणी अथवा उपशमश्रेणीमें चढ़ जाता है। परम अतिशयरूप सत्य ध्यानकी ऐसी ही महिमा है। जो अतिशयरूप निश्चलता न भी प्राप्त हुई और थोड़ी देर अंतरमहूर्तके भीतर ही तक ध्यानस्थ रहा तो यद्यपि छठी श्रणीमें आकर अपना नाम प्रमादी धरा लेता है, परन्तु शीघ्र ही फिर सातवेंमें जा विराजता है। इस तरह सानन्द ध्यानके अभावमें बार बार परिणतिको फेरता है। हजारों बार सातवेंसे छठे और छठेसे सातवेंमें जा विश्राम करता है। इसकी यह क्रिया परम निरंजन निःक्रिय परमात्माकी निराकुल

अवस्थासे विपरीत है, तथापि अवश्य निःक्रियताकी साधक है। भावना क्रियारूप है। शुद्धोपयोगका परम निश्चल भाव कार्य्यरूप है। जो कोई जिसका मनन करे वह उस रूपमें क्यों नहीं हो जायगा? अवश्य ही हो जायगा। भावना स्वरूपकी कार्य्यकारी है। इस भावनामें चिज्ज्योतिका प्रकाश है। इस भावनामें आत्म-ज्ञानका विकाश है। इस भावनामें ज्ञान-सुधाका सरोवर है, जिसमें सन्तजन स्नानकर अपना विभाव मल दूर करते हैं। यह भावना निर्ग्रन्थ अवस्थाकी दिगम्बर मुद्राके बाह्य सहकारी कारणकी आधारिणी है। अनेक संत यथा जातरूप सेय सेय परीषह और उपसर्गको सहनकर स्वरूप समाधिमें अडिग रह स्वकल्याण करते रहे हैं। आपरूप पद आप ही है। अपनी पदवीमें रहना सहज बात है। वास्तवमें परपदवीमें रहना कठिन है। यह आत्मा अनेक बार अनेक परपदवियोंको लेकर उनके स्थिर रखनेकी कोशिश करता रहा, परन्तु अन्तमें असफलीभूत होकर हताश ही रहा। सो सत्य ही है। इसकी पदवी तो चैतन्यरूपही है। परपदवी इससे भिन्न जड़रूप ही है। यह बलात्कार जड़के परणमनको अपनी इच्छानुसार उसके परिणामनके विरुद्ध नहीं कर सक्ता। स्वरूपज्ञानी निज शिव-प्राणप्रियाकी दृढ़ भावनामें अत्यन्त आशक्त हो उसकेही प्रेममें आल्हादित रह इन्द्रियाधीन सुखवासनओंको रज तुल्य तुच्छ समझता हुआ परम स्वाधीन **अनुभवानन्द**का स्वाद ले सन्तुष्ट रहता है।

अपूर्वकरणकी बारात ।

(२४)

निज स्वरूपानन्दी आत्मा अपनी शक्तिकी व्यक्तामें अत्यन्त लीन हो अप्रमत्त गुणस्थानमें सातिशयताको उपलब्धकर अर्थात् संसारी जीव शत्रु मोह–कर्मकी चारित्र मोहनीकी इक्कीस प्रकृतीको क्षय अथवा उपशम करनेका प्रारम्भकर प्रथम **अधःकरण**में अंतर्मुहूर्त ठहरकर अपने परिणामोंकी विशुद्धता करता है । वीतराग सहजानंदरूप भेदज्ञानके प्रभावसे समय २ अनंतगुणी विशुद्धताको प्राप्त करते हुए कर्मबंधकी स्थितिको घटाता है। अपने मोक्षानंदके शुभरागके कारण समय २ पुण्यकर्मके रसको अनंतगुणा बढ़ाता और असातादिक पापकर्मके रसको अनंत भागरूप कम करता है । इस अधःकरणके कालको व्यतीतकर ध्यान–मुद्रामें लवलीन परमात्मरसवेदी अंतरात्मा शीघ्र ही **अपूर्वकरणमें** जाकर अष्टम गुणस्थानवर्ती कहलाता है ।

इस श्रेणीमें स्थित हो स्वरूपावलम्बी समय २ अपूर्व विशुद्धताको उसी प्रकार प्राप्त करता है, जैसे सुवर्णकी शुद्धता अग्निमें पकते हुए समय २ अधिक २ अपूर्व होती जाती है। प्रथम शुक्ल ध्यानकी श्वेततामें रंगा हुआ शुक्ल लेश्या सिवाय अन्य लेश्याओंका त्यागी श्रुतज्ञानके अर्थोंका मनन और परिवर्तन करता हुआ अपने शुद्ध स्वरूपके रसको स्वादरूप करनेसे रुकता नहीं । परम अतीन्द्रिय शुद्धात्मोत्पन्न परमानन्द सुखरसके श्रोतको उपादेय जान उसीके कारण और कार्य्यको विशेष पहिचान उसीकी शुद्धभावनामें अपना कल्याण

मान सम्यक्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्गमें तल्लीनता ठान शिवनारिका आशक्त स्वरूप मदोन्मत्त आत्मा निजरंगभूमिमें कल्लोल करता है। **संवर, निर्जरा, और मोक्ष** तत्त्वोंके बारबार रंगभूमिमें आकर नृत्यकरते हुए देखकर भी यह स्वरूप-वेदी उनकी कुछ भी परवाह न कर अपने यथार्थ रूपके ही दर्शन किया करता है। इन तीनों तत्वोंमें उसको नित्य अपना रूप ही झलकता है। यद्यपि इसकी रंगभूमिमें **आश्रव** और **बंधतत्व** भी अपना अत्यन्त ही मन्दरूप बनाये आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु उनके पगकी अत्यन्त मन्द चाल चैतन्य राजाके चित्तको विकारी बनाती नहीं। यह चैतन्य राजा अप्रमत्तरूप रहता हुआ अपनी शिवनारिसे सम्मेलन करानेवाली अनुभूति सखीसे उसी तरह प्रेम प्रगट करता है जैसे कि, कोई पुरुष अपनी होनेवाली पत्नीके पाससे आई हुई सखीके साथ स्नेहकर उससे स्नेहपूर्वक वार्तालाप करै और उस नारिके गुण और रूपकी महिमाको श्रवण कर उस नारीमें समय २ अधिक २ स्नेहको वृद्धि करै। यह क्षपकश्रेणीमें चलनेवाला शीघ्र ही शिवमहलमें जायगा। अतः इसके रूपकी मनोहारिता अवर्णनीय है। इस चैतन्य राजाकी बारात शीघ्रतासे शिव–घरको चली जा रही है। आत्माके उत्तमक्षमादि अनंत गुण इस चैतन्य राजाके अनंत बाराती हैं। सम्यग्दर्शनके वीतरागरूप वस्त्र पहने, सम्यग्ज्ञानके आभूषणोंसे सुशोभित, सम्यग्चारित्ररूपी गजपर आरूढ़ हो यह दूल्हा अपनी अद्भुत, विशाल और अपूर्व विभूतिके मदमें उन्मत्त होता हुआ, परमाल्हादित, शोकादिक नोकषाय और संज्वलन क्रोधादिक चार कषायको अपनी अपूर्व चैतन्य शक्तिसे दबाकर निर्बल बनाए हुए

समय २ बारातकी चालको बढ़वाता हुआ बढ़ा चला जा रहा है। भव्य-जीव-दर्शक इस दूल्हाकी मनमोहनी बारातको देखकर अत्यन्त हुलसायमान होते हैं और अनुभूति सखीसे मिलनेकी कामना उत्पन्न करते हैं। धन्य है यह अंतरात्मा! यह वीतरागी, परमयोगी योगीन्द्रोंके मनको अगोचर ऐसे परमात्मपदका दर्शन करता हुआ भवानन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्दका** स्वाद ले परम तृप्त रहता है।

अनिवृत्तिकरण–स्वयंवर।

(२९)

देखे, सुने, अनुभव किये हुए भोगोंकी इच्छारूप निदान आदि समस्त संकल्प विकल्पोंको त्यागकर निर्विकल्प–निश्चल–परमात्म-तत्त्वकी एकाग्र भावनारूप ध्यानमें तल्लीन होकर यह भव्यात्मा स-म्यग्दृष्टी एक २ समयके ऐसे सूक्ष्म कालमें भी मोक्षमार्गके अनंत कदमोंको तय करता हुआ अत्यन्त वेगसे चला जा रहा है। इस-की एक २ समयवर्ती गतिमें भी इसको अपने आत्म–द्रव्यके अन-न्त गुणोंका अनुभव अपनी भेदज्ञानरूपी विवेक परिणतिके बलसे हुआ करता है। जिस अनुभवकी तेजीको देखकर इसके अन्तरमें विराजित चैतन्य-धनके चोर यद्यपि निर्बल हो गये हैं, तथापि विशेष बलहीन हो या तो गुप्तरूपसे कहीं छिपके बैठ जाते हैं या अनुभवा-ग्निकी तेजीकी लपटोंसे बिलकुल मृत हो जाते हैं। संसारियोंको स्वस्वरूप भावनासे पराङ्मुख रखनेवाले दर्शन-मोहके बलको न पाते हुए भी स्वद्रव्य तन्मयरूप यथाख्यात–चारित्रकी प्राप्तिमें बाधा डालने

वाले ११ कषाय और नौ नोकषाय तो बिलकुल ही ठंडे पाला हो या तो मृतरूप पड़े रहते अथवा सम्पूर्णतया अस्त हो जाते हैं। जगत्का मोटा वैरी पापका बाप लोभ कषाय अपनी कठोरताके कारण इस भव्यात्माके अंतर्मुहूर्त तक मोक्षमार्गमें चढ़नेके परिश्रमसे भी बिलकुल उपशम या क्षयको न पाकर जगता रहता है और जब यह अपने सम्पूर्ण कषाय–भ्राताओंसे छूटकर अकेला रह जाता है तब इस भव्यात्माको सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानावरोही कर देता है। परन्तु यह सम्यग्दृष्टी इसके **अनिवृत्तकरण** नाम नवमें गुणस्थानमें ठहरकर अपना बहुतसा मार्ग तय कर लेता है।

इस अनिवृत्तकरण नाम गुणस्थानकी कुछ ऐसी महिमा है कि, जितने ध्यानी पुरुष इस श्रेणीमें मोक्ष–मार्गमें गमन करते हैं, सबकी समय २ चाल एकसी ही होती है चाहे उन सबके शरीराकार आदि संस्थानोंमें भिन्नता भी हो। आहार–निहार–विहार–त्यागी, स्व–द्रव्य-गुण–पर्य्याय–अनुरागी, स्वरसास्वादसागरमें रागी, संसारशरीरभोगोंसे अत्यन्त विरागी, परमात्मस्वरूप सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणकी एकत्वतामें पागी, क्षुत्पिपासादि द्वाविंशति परीषहों और उपसर्गोंके आक्रमणकी निःशंकाका-भागी, परम ऋषि, गृहारम्भ भागिनी स्त्रीका त्यागी होकर भी एक विलक्षण नारीसे अनुरागी है। यद्यपि बाह्यमें साधु है, परन्तु अंतरंगमें असाधुसा राग रखता हुआ भी जगत्पूज्य पदकी योग्यतासे वञ्चित होता नहीं। इसका राग आकाशकी संध्याकी रक्तताके सदृश लाल नहीं है किन्तु श्वेतवर्ण है। शुक्ललेश्याकी प्रबलतासे रागका रंग चढ़ता नहीं, किन्तु समय २ वह राग

अधिक २ शुक्ल होता जाता है। सो वास्तवमें यह उचित ही है; कारण कि जिस नारीसे यह आसक्त है--वह उसीको ही चाहती है जो शुक्लताके वस्त्रोंसे तन्मय हो । उस नारीको अन्य वर्णोंके वस्त्रोंसे वैराग्य है, क्योंकि वह स्वयं भी शुक्लता और शुद्धताको धारती हुई अपने तनको सफेद वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत रखती है । सदृश्यकी सदृशमें ही प्रीति होती है । जिस समय इस आसक्त पुरुषकी मुद्राको अपने समान अत्यन्त शुद्ध, सफेद और साफ देखती है, उसी समय यह नारी चिरस्थायी वज्रमणिमई अनंत स्वाभाविक गुणरूपी दानोंसे पोथी हुई श्वेत परम शोभित और मनहरण वरमालाको उस पुरुषके गलेमें डालकर उसके साथ एकासनपर तिष्ठ जाती है। उस समयकी शोभा अवर्णनीय तथा अचिन्त्य है। धन्य हैं वे परम साधु जो ऐसी सुन्दर स्त्रीसे आसक्त चित्त हो उसकी भावनामें मगन हो परमाल्हादित रहते और अपनी इस प्रतीतिसे कि हम अवश्य शिव--तियाके वर होंगे, साहसके साथ उद्यम करते तथा इस उद्यममें नहीं थकते हुए स्वरूपसमाधिके अपूर्व बलसे विषय सुखोंको शून्य समझ अतींन्द्रिय अविनाशी **अनुभवानंदका** स्वाद लेते हैं।

सूक्ष्मसांपरायकी विजय।

(२६)

स्याद्वादरूप कर चिन्हित और सांसारिक दुःख परिपाटीके संचालक मोहनीकर्म और इसके अनुयायी ३ घातिया कर्मोंका नाशकर अनंतसुख, अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य्यको प्राप्त करनेवाले श्री-

अरिहंतभगवान्‌रूप हिमवान् पर्वतसे विनिर्गत श्रीजिनवाणीरूपी गंगामें धारावाही स्नान करके अपने आत्म–तनको निर्मल करनेवाले परम योगीश्वर शुद्धोपयोगमें तन्मय हो आनन्द भवनके छठे खन (माले)में सुशोभित रहकर संसार नेता मोहके ज्येष्ठ पुत्र अत्यन्त बलवान् लोभका सत्यानाश करनेमें उद्यमवान् हैं। पृथक्त-वितर्क-विचार नामा शुक्ल ध्यानसे निकले हुए तीक्ष्ण साम्यरूप बाणोंकी बारम्बार चोटोंके खानेसे इस शत्रुका शरीर जरजरित हो गया है। मोहके ३ पुत्र क्रोध, मान, मायाका तो नाश अथवा मूर्च्छाप्राप्त होना तो पहले हो ही चुका है; अब इस दसवें गुणस्थानमें केवल सूक्ष्मलोभ ही अपने पराक्रमको जमाए खड़ा है। परंतु ऋषीश्वरके बाणोंसे निर्बलसा रहकर एक अंतर्मुहूर्तके भीतर नाश अथवा मूर्च्छित हो जाता है। धन्य हैं ये मुनि ! धन्य हैं ये धीरात्मा ! ये ही सच्चे योद्धा हैं। इन्हीं वीरात्माने अपने ध्यानके परम प्रचंड शस्त्रसे मोहकी सर्व सेना मूर्च्छित कर डाली है। यही परम निस्पृही साधु आत्माके वीर्य्यको परम वीर्य्य मानकर उसके बलसे अपने स्वात्मानुभवरूपी दृढ़ आसनको न छोड़ते हुए विभावोंकी वासनासे अत्यंत दूर रह स्वभावसेवी हो, निर्मल अमृतका भोजन करते हुए, श्री जिनवाणीरूपी गंगाका स्वच्छ नीर पीते हुए, दशलक्षणरूपी धर्मवृक्षसे टक्कर खाकर बहनेवाली शांतितारूपी वायुका श्वासोश्वास लेते हुए, परमात्मा होनेकी पूर्ण रुचिमें तन्मय हो ज्ञान वैराग्यरूपी मसालोंसे अत्यंत स्वादिष्ट अनुभवानंदरूपी सलोनेको भक्षणकर स्वात्म तनकी परम शोभाको विस्तार प्रफुल्लित हो रहे हैं।

उपशांतमोहकी क्षणिकता।

(२७)

परम प्रतापी परमात्मा सूर्य्यके ज्ञान–तेजको सेवन करके और स्वसंवेदन ज्ञान निर्मल चन्द्रमाकी शांत क्रान्तिका दर्शन कर करके तथा स्वरूपतृप्तताकारक स्वात्मजनित सुधाका भुक्तपान करके एक सम्यक्दृष्टी अंतरात्मा, अपने आत्मतनको दृढ़ बनाए हुए, वीतराग विज्ञानताके तीक्ष्ण भालेके अभ्याससे अपनेको मदिरा पिलाकर बेसुध करनेवाले मोह शत्रुके पुत्र पौत्र २८ कषायोंके आक्रमणोंको टालते हुए और उन सबको इधर उधर मूर्छित करते हुए तथा मोह शत्रुको स्वपुत्रोंकी मूर्च्छाके इलाजमें छोड़ आनंद भवनके सातवें खनमें चढ़ विश्राम लेता है। स्वरूप मननमें तन्मयता प्राप्तकर और अपने स्वभावका निर्मल अवलोकन कर यह स्वगुणानंदी यथाख्यात चारित्रकी पदवाकी भोगता हुआ **उपशांत मोह** गुणस्थानी कहला कर मुक्ति कन्याके वरनेका उत्साह करता हुआ उसके रूपकी चिन्तामें उन्मग्न हो ज्योंही स्थिर होता है त्योंही एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर ही मूर्च्छा प्राप्त मोह शत्रुके पुत्रोंमेंका बड़ पुत्र संज्वलन लोभ मूर्च्छाको त्याग अत्यन्त वेगसे झपटता है और अपनी मोह–पासीमें उसका गला फंसा सातवें खनसे छठे खनमें ले आता है। इतनेमें अन्य पुत्रपौत्र भी जागृत होते हैं और इसके भालेकी चोटोंसे जर्जरित होकर क्रोधमें भरे हुए सारे ही धीरे धीरे इसको गिराते हुए आनन्द भवनके नीचे कर देते हैं। इतनेमें मिथ्यात्वनामा प्रबल

बैरी आकर इसको आपत्ति महलमें ले जाकर पटक देता है। सच है अग्निको और शत्रुको दबाकर रखनेसे वे अपना नाश करते ही हैं। इनका तो सर्वथा क्षय ही बाधाहारी है। ग्यारहवें रुद्र महादेवको इसी प्रकार दगा खाकर आनन्दभवनके सप्तम खनतक चढ़कर गिर संसार परिपाटीमें उलझकर अतीन्द्रिय आनन्दसे इंद्रियोंके क्षणिक सुखमें लुब्धता कर जगत्का अपमान और हास्य सहना पड़ा। धन्य हैं वे परम साधु, जो इस तरहके अपमानको बचाकर अपने बलसे फिर भी चढ़ते हैं और अब अपने भेद-ज्ञानकी तीक्ष्ण खड्गसे मोहके क्षयको उद्यमी होते हैं। जिनको मुक्तिकन्याको वरकर अनन्तकाल तक सुधा-समुद्रमें ही लुप्त रहना है, वे तो हजार उपाय करके भी अपनी परिणतिको पुत्र, कलत्र, मित्र व शरीर सबसे बचा आत्माको परमात्मारूप देखनेमें ही लगाकर सांसारिक सुखोंसे विपरीत अनुभवानन्दका स्वाद लेते हैं।

क्षीणमोही-अर्जुनका विश्राम।

(२८)

अन्ध धृतराष्ट्र-मोहके पुत्रोंका समररंगमें विध्वंस कर चैतन्य-अर्जुन अपने ध्यान-बाणकी प्रशंसा करता हुआ उसी ध्यान-बाणकी निराली एक तानमें तन्मय हो एकत्त्व-वितर्क-विचार नामा शुक्लध्यानको पाकर गत बने हुए बनावोंसे उपयोगको हटाकर शिव-महलके निर्विघ्न आठवें खनमें जा विश्राम लेता है। वीतरागताकी मनोहर

सुन्दरता उसके मुखकमलको प्रफुल्लित बना रही है। इसके मोहजई अमित तेजके प्रभावसे जगत्के सम्पूर्ण सुगुण इसके आश्रय लेनेको परम उत्सुक हुए चले आ रहे हैं। त्रिलोकराज्यकी हस्तनापुर राजधानीके कपाट अर्थात् आवरण शीघ्र ही दूर होनेवाले हैं। इस महात्माकी शुक्लध्यानरूप बिजली अपने एक अंतर्मुहूर्त मात्रके परिश्रमसे ही सम्पूर्ण स्वात्मसुखविरोधकोंको विध्वंस कर देगी। यह महात्मा अपनी प्राणवल्लभा सुमतिरानी द्रौपदी सतीके अद्भुत शीलको निष्कलंक पाकर उससे परम सत्य प्रीति विस्तारता है और उसको बारबार धन्यवाद देता है कि, उसने इसके कुलकी लाजको अनेक कुमति कुलटाके शत्रुओंद्वारा विघ्न आनेपर भी स्थिर रक्खा है। यह महात्मा अब संसार परिपाटी मोहकी फांसीमें अनंत काल तक भी फंसनेका नहीं है। अपने महान् परिश्रमके फलको पाकर परम संतुष्ट, परम कृतकृत्य, परम निष्कषायी, योगीश्वरोंमें श्रेष्ठ, **क्षीणमोहगुणस्थान**–धारी, स्वात्माराम–विहारी, परम अविकारी, निर्विकल्पलता–मंडप–संचारी, परमस्वादिष्ट, आत्माधीन सुखभोग-अनिवारी, अपनी अपार महिमाको लिये सम्यग्ज्ञानकी मनोहर सेज पर लेटा हुआ यथाख्यात चारित्रकी अत्यन्त सूक्ष्म चादरको ओढ़े हुए, पंचेन्द्रिय अतीत अतीन्द्रिय–रसके विलाससे पुष्टता धारता हुआ यह ऋषि उत्तम सम्पूर्ण भवबीज आकुलतारूप संसृति आनंदोंसे अतीत **अनुभवानंदका** स्वाद लेता है।

सत्यार्थ अरहंतदेव ।

(२९)

स्वसमय निर्विकल्प समाधिरूप कारण समयसारसे कार्य्य समयसारकी प्राप्ति कर अपने आत्मीक रसानुभवके विरोधी चार घातियाकर्मोंके नाशसे पूर्ण प्रकाशका लाभ कर आत्म–सूर्य स्वतेजके प्रभाव और आकर्षणसे त्रिलोकके भव्य प्राणियोंके मुद्रित हृदय–कमलको प्रफुल्लित करता हुआ उनको अपना निकटवर्ती बनाता है । शत इन्द्र परमाल्हादसे इस अमिततेज भानुकी उष्णतासे पोषित होनेके लिये अपने परिवार सहित आकर सूर्य्यमंडल–समवशरणकी भूमिमें स्थित हो दिव्य–वचन किरणावलियोंका लाभ ले अपने अंतःकरणको पुष्ट करते हैं । इस तेरहवें गुणस्थानधारी जिनेन्द्र आत्माकी महिमा वचन अगोचर अगाध है । जिस निजात्म देवको यह बारहवें गुणस्थान तक परोक्ष दृष्टिसे देखता था, उसी देवाधिदेवको यह प्रभु अब साक्षात् अवलोकन कर प्रत्यक्षीभूत करता है । अहा ! उस व्यक्तिको कितना आनन्द होगा जबकि उसकी वह प्राण–प्रिया जिसको प्रत्यक्ष देखनेकी कामना करता हुआ भी बहुत कालसे उसका परोक्ष ही विचार करता था यकायक उसके सन्मुख आकर खड़ी हो गई हो । इस त्रिलोकनाथके सुखकी महिमा अपार है । शिवकन्यकाके मनोहर महलके नवें खनमें यह पहुंच गया है । मात्र एक खनको तय करके ही यह शिव–कन्यासे परम संभोगके आनंदको अनंत काल तक एक ही स्थानमें विराजित रहता हुआ प्राप्त करेगा ।

इस समम परमौदारिक शरीररूप घरमें अपनेको व्याप्त रख यह चिदानन्द प्रभु भव्यजीवोंके पुण्य–प्रभावसे विना अपनी इच्छाके ही आत्मीक धर्मश्रौतकी निर्मल अमृतरूप वृष्टिको करके जीवोंके अनादि अज्ञानतमको विध्वंस करता है। इस समय इस प्रभुके अलौकिक अतिशयोंका समागम है। धन्य है यह आत्मानुभव, धन्य है यह परम शुक्ल ध्यान, धन्य है यह उत्कृष्ट निर्विकल्प समाधि कि जिसके प्रभावसे कोसों तकके जीवोंके परिणामोंमें द्वेषकी अग्नि शांत होगई है। प्राकृतिक वैरी भी परस्पर मित्रताका व्यवहार कर रहे हैं। वनोंमें शुष्क और फलरहित वृक्ष भी इस समय हरे भरे और फूले फले विकसित प्रसन्नरूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कोसों तक के जीवोंकी दरिद्रता प्रयाण कर गई है। इस आत्मप्रभुकी महिमा उन्हींके ज्ञानगोचर है, जो स्वयं इस प्रभुसे अपनी अंतरंग लौं लगाकर पंचेन्द्रिय ग्रामोंको प्रलय कर समाधिके सागरमें निमग्न हो जाते हैं। यह ज्ञानसूर्य्य परमतेजसे लोकालोकके ज्ञानसे परिपूर्ण किसी भी जातिकी अज्ञानतासे रहित है। सच है जहां पूर्ण प्रकाश है वहां अंधकारका अंश नहीं। भव्यात्मा ऐसे ही आत्मदेवको सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी कहकर अपना आप्त अर्थात् पूजने-योग्य देव मानते हैं तथा इसके सिवाय अन्य समस्त संसारमें रागी देवोंको मोक्ष–मार्गमें सहाई नहीं जानते हैं। स्वात्मानुभवके उत्कृष्ट फलके भोक्ता श्रीअरहंतदेव परमात्मा जीवन्मुक्त अवस्थामें रहकर अनेकोंको कल्याण–पथ प्रदर्शित करते हुए अपनी प्रिय सखी अनुभूतिसे वार्तालाप करते हुए अनुपम निर्विकार स्वाधीन अनुभवानंदको उपलब्ध करते हुए परमाल्हादित हो रहे हैं।

———

अयोग केवली ।

(३०)

शिव–महलके दशवें खनमें विराजित चतुर्दश गुणस्थानवर्ती अ इ उ ऋ ऌ–ऐसे पांच लघु अक्षर उच्चारण मात्र समय भर ठहर कर तृतीय और चतुर्थ शुक्ल ध्यानके बलसे प्रथम ७२ और फिर १३ कर्म प्रकृतियोंको अपने शुद्ध आत्मस्वरूपसे विना किसी प्रयत्नके दूर करता हुआ यह शुद्धात्मा समस्त मलसे रहित हो निर्मल दर्पणसम परम सुन्दर होकर शिव–महलके टावरमें जाता है और शिवनारीसे मिलकर अकथनीय आनन्दको प्राप्त करता है। जिसके स्नेहके वशमें हो समस्त विषय सामग्रीको त्यागकर यह मुनि बन और पर्वतकी गुफाओंमें बास करता था और हर समय वही रटना और वही लय लगा रक्खी थी कि किसी भी तरहसे हो मुझे परम तृप्तताकारिणी, स्वाधीन सुख–विस्तारिणी, अनन्तकाल तक भी संयोगको नहीं छोड़नेवाली शिव–तियासे भेंट हो। आज उसी अद्भुत सूरत–धारिणी शिव–तियाको प्राप्तकर इस सिद्ध परमात्माको जो स्वजन्य सुखका अनुभव हो रहा, है उसकी तुलना करनेके लिये जगत्में कोई पदार्थ नहीं हैं । तीन लोककी प्रभुताको रखता हुआ परमात्मा सर्व संकल्प विकल्पोंसे रहित हो निर्विकल्प प्रमाण, नय, निक्षेपके व्यवहारिक कथनोंसे अतीत शुद्ध सुवर्णके समान परम शुद्ध और निर्द्वन्द्व निराबाध हो जाता है। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्यमई मुख्य गुणोंका आधाररूप परम सूक्ष्म रसमई, स्वअवगाहना संयुक्त, परको अवगाहना देनेको समर्थ, अगुरुलघु गुणसे व्याप्त, परम अव्यबाधमई रह

अनन्त काल तक स्वभावजन्य परम तृप्तताका संभोग करता है। वह न तो पर वस्तुओंका कर्त्ता है, न जगत्का न्यायकर्त्ता है और न अपने शुद्ध प्रदेशोंसे लोक–व्यापक है। वह पवित्र आत्मा कर्मोजनसे रहित हो अपनी शुद्ध परणति रानीसे ऐसा तन्मय हो जाता है कि द्वित्वका नाम तक भी नहीं रहता। परम मोक्ष पुरुषार्थका लाभकर अत्यन्त कृतकृत्य, कृतार्थ और स्वरस–मग्न हो जाता है। स्व समयरूप कार्य समयसारको प्राप्तकर अजर अमर हो पंच परावर्तनरूप संसारके संसरणसे रहित हो जाता है। परम ब्राह्मण ब्रह्मचारी हो कर भी शिव–नारीको वर कर गृहस्थीका सा चारित्र करता है, षट् गुणी हानि वृद्धिके व्यापारको करके निरन्तर परम अमृत–रसमई धनका लाभ करता है और उस धनसे अपनेको और अपनेसे अप्रथक्भूत शिव–नारिको तृप्तता देनेवाले और परम आल्हादित करनेवाले स्वरूपसंभोगकी सामग्री उपलब्धकर निराकुल रहता है तथा शात कोमल समताकी सेज्यापर शुद्ध गुणोंकी चादरको विछाये व शुद्ध परिणामोंकी सौड़को ओढ़े अपनी निजरूपमई शिव–तियाके संग कल्लोल करता है और जगत्के क्षणिक आनन्दोंसे अतीत परम **अनुभवानंद**का अनुभव करते हुए अपनेको अपनासा सर्वथा शुद्ध देखता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मचारीकी दशामें रह स्वाधीन आनंदका विलासी बन परमोत्साहित और परम गुणानंदी रहता है।

———

शिव-तिया-संगम।

(३१)

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल—इन पांच द्रव्योंमें छिपा और उनसे अलग यह आत्मा अपनी परमात्म—शक्तिका पूर्ण मान कर और अपने सहाई अपने आश्रयमें स्थित संपूर्ण गुणरूप सेवकोंको साथ लिये हुए अपने सत्ता मैदानमें उपस्थित हो अपनी ही बेखबरीसे उसमें प्रवेश किये हुए मोह—शत्रु और उसकी सेनाको भगानेके लिये उद्यमशील हो गया है। मोह—शत्रु कायर है, यह आत्मा बर वीर है; मोह शत्रु अज्ञानी है, यह आत्मा ज्ञाता दृष्टा है; मोह—शत्रु अधीर है, यह आत्मा धीरवीर है; मोह शत्रु अतृप्त है, यह आत्मा अत्यन्त तृप्त संतोषित है; मोह—शत्रु आकुलताकारक है, आत्मा निराकुलताका ही साधक है; मोह—शत्रु नित्य बलसे हीन है, आत्मा नित्य बलवान् और वीर्यवान् है; मोह—शत्रु मिथ्यारूप है, आत्मा यथार्थ सम्यक्तवान है; मोह—शत्रु बाधा प्राप्त है, आत्मा अव्याबाध और निर्विघ्न है; मोह—शत्रु अपनी रंगतको बाह्य दिखाकर स्थूलता प्रगट करनेवाला है, आत्मा अत्यन्त गुप्त मन, इन्द्रियोंसे अतीत रह सूक्ष्मताका संभोगी है। इस प्रकार इन दोनोंके बलोंमें अत्यन्त फेर है। यही कारण है कि सत्ता—मैदानमें आत्माकी सर्वाङ्ग सुन्दर शांत मुद्रा देखकर मोह अपना मुँह छिपाये रहता है। उसका सारा तन भयसे कांपा करता है और गुप्त रहकर ही अपनी ओरके योद्धाओंको आत्म—वीरका मुकाबला करनेको भेजता

है। परन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ—इन ४ सुभटोंमेंसे व हास्यादि नोकषाय—वीरोंमेंसे जो कोई आत्म—वीरके सन्मुख आता है—वही इस आत्माकी अभेद रत्नत्रयरूप परम सामायक भावकी फुंकार खाते ही डर करके भाग जाता है। यह आत्मवीर सत्ता मैदानमें बहुत ही चौकन्ना होकर खड़ा रहता है। जो कोई इधर उधरसे निकट आ भी जाता है, तो उसे ही सम्यग्ज्ञानकी खड़्गसे खंडित करता है तथा जो कोई विषय—इच्छारूपी डायन आत्मापर अपना दाव फेंकती है यह धीरवीर उसी समय वैराग्यकी ढालसे उस चोटको पीछे पटक देता है। मन, वचन, काय त्रिगुप्तिरूप संवरके अश्वपर सवार हो मैदानमें खड़ा २ यह आत्मा किसी भी कर्म शत्रुको अपने पास ठहरने नहीं देता, जो कोई आते हैं वे यों ही मुंह लेकर चले जाते हैं। अपने सत्ता—मैदानमें छिपे छिपाये बैरियोंको दग्ध करनेके लिये ऐसे अद्भुत निर्मल ध्यानकी लग्नि लगा देता है, कि जिसकी लपक अपने आत्मा और उसके अनंत गुणोंको दग्ध करती नहीं, किन्तु उस मैदानकी अनेक झाड़ियोंमें छिपे छिपाये शत्रुओंको जला डालती हैं। इस तरह मैदानसे परकी वासना भी न रख—यह आत्म-वीर अपने तेज अत्यन्त तीव्रगामी संवर अश्वपर चढ़े हुए अपनी प्रिया मंगलमती मुक्त—तियाके द्वारपर पहुंचता है और चट उस अश्वसे उतर शिवनारीसे मिलता है और परस्पर ज्ञानानंदकी गोष्टी कर सम्पूर्ण विकल्पोंसे अतीत सहज स्वाभाविक **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है।

———

मेरा भाग्योदय ।

(३२)

हा ! आज मैं बड़े आश्चर्य्यमें हूं, वनों और पर्वतोंकी गुफाओंमें रहते हुए तथा शिलाओंमें तप करते हुए मुझको कितने वर्ष बीत गये, परन्तु अभीतक कष्ट ही कष्ट मालूम पड़ा। दूसरोंको तो अनेक ऋद्धि सिद्ध हो जाती हैं। मैं अबतक क्यों रीता रहा? अहा ! सच है, जिस स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा यह जीव सर्व जगत्को अपनेसे पृथक् करता है, जिस सम्यग्ज्ञानके द्वारा यह जीव परस्वरूपसे अपने भावको हटाता है, जिस आत्मज्ञानके द्वारा यह जीव स्वस्वरूपावलम्बी होता है, जिस आत्मानुभवके द्वारा यह जीव स्वाधीन, सहज स्वाभाविक, निर्मल और बंधरहित अमृतमय सुखका स्वाद लेता है तथा जिस स्वभाव परिणतिके द्वारा यह जीव इंद्रादिक और चक्रवर्तियोंकी सम्पदा और इन्द्री–जनित भोगोंको भी अपने मननके विरोधी और बंधकारक समझता है, ऐसा आत्मज्ञान-रूपी–दीपक अबतक मेरे हृदय–मंदिरमें नहीं जागा। मुझे लौकिक ऋद्धियोंसे क्या मतलब? वे होवें या न होवें, क्योंकि जिन आत्मज्ञानी योगियोंको यह ऋद्धियां हो भी जाती हैं, तौ भी वे इनकी कुछ भी पर्वाह नहीं करते और न इनसे कोई काम लेना चाहते हैं। सच है, यह मेरी बड़ी मूर्खता है, जो मैं ऋद्धियोंकी अभिलाषा करके गृहस्थावस्था त्यागकर भी गृहस्थके समान ऋद्धिधारी धनवान् होना चाहता हूं। यह क्षणिक विभूति मेरे आत्मावलोकनसे विलक्षण है। मुझे अब सचेत होना चाहिये और शीघ्र ही इस जगत्की संपदा और इन्द्रि-

योंकी आशा व अपनी असत् मान्यताकी तृष्णाको हटाना चाहिये और निर्विकल्प समाधिके आंगनमें जाकर कल्लोल करना चाहिये। उस निर्मल आंगनमें नाना प्रकार नयोंके विकल्परूप—कांटे व कंकड़ नहीं हैं, नयोंकी पक्षका अभाव है और न वहां गुणस्थानरूप ऊंच नीचपना है। स्वच्छ निर्मल आंगनमें ही रमण करना मेरा हित है। उस आंगनमें जाते ही स्वानुभूति मेरी प्रिया मेरे निकट आ जाती है, जिसकी संगतिमें अनेक प्रकार संभाषण और परस्पर प्रीतिका प्रादुर्भाव अद्भुत आनन्दका दायक है। उस परम सामायिकमें मेरा आत्म—शरीर सम्पूर्ण ज्ञान—ज्योतिका पुंज—रूप ही हुआ मानों झकलता है। यद्यपि ज्ञेय पदार्थ झलकते हैं, परन्तु भिन्न २ ही रहते हैं और मैं भिन्न २ ही रहता हूं; मेरा स्वरूप वास्तवमें अव्याबाध है। यदि त्रिलोकके तीव्र और मन्द शब्द, तीव्र और मन्द गन्ध, तीव्र और मन्द रस, तीव्र और मन्द स्पर्श, तथा भारी व हलके पुद्गल स्कन्ध सर्व ही मेरे आंगनमें अपने स्वाभाविक वेगको लिये हुए चले आवें तथापि मेरे आंगनमें कोई धक्का नहीं लगता; कोई मलीनता नहीं आती; कोई उद्वेग नहीं खड़ा होता। यह मेरी अनुभूतिका ही प्रताप है कि जिससे मुझे कोई लाख बाधा देनेको आवे, परन्तु मैं स्वभाव दृढ़ रहकर निजानन्दका स्वाद लेता हूं। असलमें मेरी ज्ञान-दृष्टी अब खुली है। अब मेरे भाग्यका उदय आया; अब मेरे अंतरंगकी सम्पूर्ण व्यथा दूर हुई। अहा! अब मैं अवश्य ही भवकारण दुःखरूप आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानंदका** स्वाद ले सदा स्वरूप-उन्मत्त रहूंगा।

———

वीर पुत्र ।

(३३)

ज्ञानामृतका पीनेवाला भव्यात्मा सम्पूर्ण विकारोंसे रहित स्वाधीन निजमुखका अवलोकन अपने ज्ञान दर्पणमें प्राप्तकर अत्यन्त सुख अवस्थाको प्राप्त हो रहा है। यह ज्ञानी असंख्यात लोकप्रमाण कषाय परिणामोंके रागसे विरोध-रूप होकर वैराग खड्गसे हरएक मोह-वैरीके प्यादेका विध्वंस कर रहा है और वीतरागताके शांत मनोहर जलमें नहा नहा कर मोह-युद्धके खेदको मिटा रहा है। यह तत्वज्ञानी जब २ किसी भी कषाय वैरीको ठंडा करता है तब तब जयके आनन्दमें भरकर त्रिलोक आंगनमें अपनी भेदज्ञान परिणतिको नृत्य कराकर और उसके अद्भुत चिन्नादको श्रवणकर परम आल्हादित होता है। यह स्वरूप अनुभवानन्दी दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी सम्यक्ता और एकताका एक ही काल अनुभव कर स्वरूप-उन्मत्त हो रहा है तथा इस विकट आत्मज्ञान-रूपी मदमें झूलता हुआ ज्ञेयरूप परवस्तुओंके आने न आने, दिखने न दिखनेकी कुछ भी परवाह नहीं करता है। इस परमात्मरस वेदीकी वेदन शक्ति परोक्ष श्रुतज्ञानके द्वारा ही शुद्धात्म-रसके स्वादमें मुग्ध हो गई है और यह इस स्वादको लेते हुए अवधिज्ञान, मनपर्ययज्ञानकी कुछ भी इच्छा नहीं करता और न केवलज्ञानको अपनेसे भिन्न जानता है। यह तो अपने विद्यमान श्रुतज्ञानको ही केवलज्ञान मानता है। क्योंकि एक परोक्षताका पर्दा पड़ा है। उसको उठाते ही वही

श्रुतज्ञान केवलज्ञान कहलाने लगता है। चीज एक ही है। गुप्त और प्रगटकी अपेक्षा नाम भेद हैं। मैं शुद्ध स्वरूप–रूप सिद्धसम अविनाशी स्वभावानन्दी और अनाकुल हूं, यही भावना शुद्ध रूपकी साधक है। अंतरंगकी दृढ़ भावना भाव्य वस्तुको अवश्य प्राप्त करानेवाली होती है। ज्यों २ भावना दृढ़, त्यों २ अंतरंग रुचि दृढ़; ज्यों २ स्वसंवेदन रसका अनुभव ताजा, त्यों २ स्वाधीन आनन्दका विकाश, यह सब प्रकाश आत्म ज्ञानका है। जिनके अन्तरंगमें आत्मज्ञानरूपी स्नेह है, उनके अंतरंगमें विकारमई राग और द्वेष जल ठहर नहीं सकता। स्वभाव तन्मयताकी अपूर्वता परम आनन्दकी साधक है। जिन भव्यजीवोंको स्ववस्तुकी चाह है, उनको परवस्तुकी चाह नहीं हो सकती। जहां स्वस्त्रीसे अन्तःकरणसे संभोग है, वहां परस्त्रीका संभोग नहीं हो सकता। जो परवस्तुकी चाह करते नहीं, जो परस्त्रीसंभोगकी इच्छा करते नहीं, वे निरपराधी हैं; उनको कोई कर्म–कालिमा–रूपी बंधन जकड़ नहीं सकता। वे शरीरमें रहते हुए भी सदा मुक्त हैं। उनके उपयोगको दबाने वाला कोई नहीं। वे अपने ही उपयोगमें सर्वको धरकर उनके भेद करके वस्तु–स्वरूपके विचारसे उनको आप दबा लेते हैं, अपने उपयोगको दबने देते नहीं। ऐसे ही वीर पुत्र श्री महावीरस्वामीके सच्चे पुत्र रह कर अपने वीरत्व और धैर्य्यसे सम्पूर्ण अंतरंग और बाह्य शत्रुओंसे निर्भय हो सर्व भयसहित आनन्दाभासोंसे अतीत अनुभवानन्दका स्वाद लेते हैं। धन्य है! यह अंतरात्मा, जो आज परम वीरताको धारकर तथा स्वभाव तन्मयतामें लीनता

प्राप्तकर चिन्मय ज्योतिके दर्शनमें लुभाया हुआ अनुभवानन्दका रस लेकर संतोषित हो अपनेको सुखी अनुभव कर रहा है।

आत्मीक रेलगाड़ी।

(३४)

परमात्म–तत्त्व–वेदी स्वपर वस्तुका वेत्ता रहकर आत्मानंदमें लीन रहता है। सम्यग्दृष्टी जीव अपने आत्म–ज्ञानके बलसे इस विकल्पको भी अपनेमें नहीं होने देता है कि मैं सुखी हूं कि दुखी हूं। उसका सत्स्वभाव उसके अनुभव गोचर है। सदा अस्तित्वरूप रहनेवाला जीवका जीवत्वभाव उसकी दृष्टीके सन्मुख है। निरालम्ब पदार्थका आलम्बन ही इस निरालम्बके लिये स्वावलम्बन है। यह पराश्रित स्वावलम्बन निश्चय निरालम्बनका साधन है। जिस साधनके साधक साधु समाधिमें समाधान रहकर सत्स्वरूपकी सत्ता और उसकी साम्यताका स्वाद लेते हैं, उनकी सम्यक्दृष्टीमें त्रिलोक एक नाट-कशाला है, जिसमें षट् द्रव्योंका नाट्य हो रहा है। इस नाट्यका ज्ञाता दृष्टा नाट्यको देखते हुए भी अपनी ज्ञान–दृष्टिमें सत् चित् आनन्दमय परमात्माकी छविको पुनः पुनः अवलोकन कर संतुष्ट और प्रसन्न रहता है। जिसको अनेक पर्याय अपने फंदमें फंसातीं नहीं, जिसको कोई विकल्परूप लता वेढ़ती नहीं, जिसको कोई कर्म-रूप वैरी भुला सक्ता नहीं–ऐसा प्रवीण चतुर सम्यक्दृगात्मा अपनी निधिका स्वामी बन उसके मानमें मगन हो रहा है। जिसकी लगन निरन्तर निज निर्भय निष्कंटक निधिपर है; परनिधिपर कदापि नहीं

है। वास्तवमें जो अपने ही धनमें संतुष्ट रहे और उसीसे स्वयोग्य व्यापार करे, वह एक निरपराधी साहूकार है। इसके विरुद्ध जो परनिधिको व उसके अंशमात्रको ग्रहण करे, वह सापराधी और चोर है। जो निरपराधी वीतरागी है, वह कर्मबंधको प्राप्त न होकर कभी भी चोरकी तरह दुखी नहीं होता; किन्तु अनादि कालसे चोरीकी हुई वस्तुओंको अपने पाससे इस कारण फेंकता जाता है कि उनका सम्बन्ध ही उस ज्ञानीको चोर और परवस्तु ग्राहकके अपयशमें रखनेवाला है। वह सम्यग्ज्ञानी अपनी भाव परिणति–रूपी रेलसे आत्म–अनुभव–रूपी ऐन्जिनको जोड़े हुए चला रहा है और आप उसमें बैठा हुआ शिव–नगरको चला जा रहा है। मार्गमें शास्त्र–स्वाध्याय–रूपी जल उस आत्मानुभवरूपी ऐन्जिनको पिलाता जाता है, जिससे वह अपनी तेजीमें शिथिल न हो। वैराग्यरूपी कोयला इस एन्जिनमें ध्यान–अग्निरूप हो रहा है। यह रेल शिव–नगरके ऐसे लम्बे सफरमें मार्गमें देवगति व अन्य मनुष्यगति–रूपी स्टेशनोंपर ठहरती जाती है। कहीं अधिक, कहीं कम विश्राम लेती है। जब जब ऐन्जिनमें शिथिलता आती है, दृढ़ किया जाता है। यह रेलमें बैठा हुआ भावावलम्बी जीव विश्रान्तिके स्थानमें इस रेलसे उतरकर विभाव स्थानमें बैठ क्षुधा तृषादिकी वेदना मेटता है, परन्तु शीघ्र शिव–नगरमें पहुंचनेके उत्साहसे इस वेदनाको और इसके उपायको भी एक संकटरूप ही समझता है। धन्य है! यह शिवतिय–आसक्त सम्यग्दृष्टी। यह अपने स्वरूपके स्वादको लेकर उन्मत्त हो रहा है और भववासी आनन्दोंसे अतीत **अनुभवानन्द**का रस ले तृप्त हो रहा है।

तत्त्वरूपी अंजन ।

(३९)

आत्माराम अभिराम केवलधाम स्वकल्याणके सन्मुख हो सर्व अपने उन वैरियोंसे मुंह मोड़ रहा है, जिनको कि थोड़ी देर पहले अपना मित्र समझ रहा था । अनादिकी भूल मिटाके अब यह स्वपथका अवलम्बी हुआ है । इसने अपनी सब उन्मत्तता बहा डाली है तथा शम दम और यमसे परम शांत, विवेकी और स्वआचारवान् बन गया है । जिनेन्द्र कथित स्याद्वादरूप परमागम द्वारा प्रदर्शित तत्त्वरूपी अंजनको लगाकर अब इसने अपनी मिथ्यादृष्टिको सम्यग्दृष्टि कर दिया है । मोक्ष–मार्गमें साधक और बाधक ऐसे दोनों प्रकारके तत्त्वोंका सत्य स्वरूप इसने पहिचान लिया है । इसके अंतरंगमें भवरुचि टूट गई, इन्द्रिय–सुखोंकी तृष्णा बिघट गई तथा कषायोंकी प्रसरता सिमट गई है । यह अब अपने रूपको देख चुका है । इसने अपनी गुप्त निधिको पहिचान लिया है । अब यह सर्व परका कर्जा चुकाकार अपने ही मूल धनसे, अपनी ही नगरीमें, अपनी ही निधिके द्वारा व्यापार करना चाहता है । मोक्ष–सुखका पिपासु हो, अतीन्द्रिय ग्राममें पहुंचना ही इसका मन्तव्य है । वीतरागताका सुहावना भोजन ही इसको प्रिय है । यह आत्माराम अपने शुद्ध स्वरूपकी ओर देखता २ अघाता नहीं है । दृष्टि निर्बल है, इससे बहुत देर तक एकसा देख नहीं सकता । यद्यपि ठहर २ कर पुनः २ अवलोकन करता है तथापि एकरूप अवस्थाको न होनेसे किंचित् आकुलित रहता है । परन्तु इसका बारम्बार देखना इसकी ज्योतिकी शक्तिको

बढ़ाता है। यहा तक कि कालान्तरमें इसकी ज्योति उस दृश्यमें ऐसी स्थिर हो जाती है कि यह फ़िर उस स्थानसे पीछे गिरनेका नहीं है। जब यह आत्माराम अपनी दृढ़ शक्तिको पकड़ लेगा, उस समय यह मोहादि कर्म शत्रुओंके आक्रमणोंकी कुछ परवाह नहीं करेगा और सर्वको भगाता हुआ स्वस्थानपर ध्यानके विमानमें बैठा हुआ सीधा चला जावेगा और सिद्ध-शिलामें लोकाग्र तिष्ठकर अनंत कालके लिये सुखी हो जावेगा। उसके परिवारके अनंत गुण उसका साथ कभी छोड़ेंगे नहीं। वह वीर-आत्मा स्वाभाविक मनोज्ञताको प्राप्तकर शिव-नारीको मोहित करके अपनेमें तन्मई कर लेवेगा और उसके सहज विलासमें आनन्दित हो **स्वानुभवके** परमामृतको परम संतुष्ट हो आस्वादन करेगा।

भेदज्ञान-साबुन।

(३६)

समस्त संकल्प विकल्पोंको दूरकर निर्विकल्प दशामें रह, जो कोई स्वानुभूति रानीके मोहमें तल्लीन हो अपने आपको इन्द्रिय-विषय ग्रामोंसे हटाकर अतीन्द्रिय परम मनोहर नगरमें विराजित करता है-वही पुरुष वीरोंका वीर, अतिवीर, महावीर है। यह उसीकी शक्तिमें है, जो अष्ट महाकर्म शत्रुओंका विजय करे तथा उस कामदेवका सत्यानाश कर डाले कि जिसके वशमें पड़े हुए संसारी जीव आकुल व्याकुल रहते हैं और अपने निश्चय ब्रह्म-स्वरूपमें चर्य्या नहीं कर सक्ते। स्वस्वरूप, उसके अनंतगुण तथा उसकी अनंतपर्याय एक ही

काल जिस परमात्माकी ज्ञान–दृष्टिमें शोभायमान होते हैं उसी परमात्माके परम मनोहर मंगल आननका जो अवलोकन कर तृप्त रहते हैं, वे ही सुधा–समूह चंद्रमाकी अनुपम कलाको पाकर स्वामृतका पान करते हैं। ऐसे सुखसमुद्र चिन्मय परम तपस्वी निज निर्विकल्प समाधिमें जब आरोहण करते हैं, तब तीन लोकको अपनेसे पृथक् देख और स्वयं एकाकी अनुभवकर स्वयं ही परमात्मा हैं–ऐसा सम्यक् विचार करते हैं। यह विचार उनको संसार काननसे हटा हरे भरे चित्ताल्हादरूप उपवनमें ले जाता है। जहां अनन्तगुण रूप वृक्षोंको देखता हुआ उनकी वैराग्य–रूप सुगन्धको प्राप्तकर अतिशय तृप्त होता हुआ सम्यक् दृगात्मा समरस–सरोवरमें निमज्जन होता है और चिर विराजित कर्म कालिमाको भेद-ज्ञान साबुनसे धोता हुआ अपने अंतर्मुख कमलको प्रफुल्लित करता है तथा परम पवित्रता प्राप्तकर ऐसा आल्हाद करता है कि मानो मैं स्वयं-सिद्ध, निरंजन, निराकार, ज्ञानपुंज और सुख–धाराधर हूं। यह आल्हाद इस तत्त्वज्ञानीके आत्म–तनको पुष्टि देता है और यह जीव अपने बहुतते रोग हटाकर आत्म–पुष्ठ हो अपने रागादि शत्रुओंसे लड़ता है और प्रत्येक चोटमें उनकी शक्तिको हीनकर विजयानन्दरूप अनुभवानंदका स्वाद लेता है।

आत्मीक हलवाई।

(३७)

निजस्वरूपानन्दी, परम स्वभाव ग्राहक, भवविलास हेय अभ्यासी, सिद्धसुख–दर्शनाकांक्षी आज सम्पूर्ण भव–नारियोंसे उदास हो शिव–

नारीके मोहमें मोहित हो गया है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि इसकी दशा बहुत ही विलक्षणसी हो रही है। स्वात्ममनन-रसकी बनी अत्यन्त तीव्र मदिराको पीकर अपने अंतरंग आपेमें बेसुद हो रहा है। जगत्के संसारी नरनारी जिसकी चेष्टा देख हँसते हैं और उसे अपने काममें उत्सुक नहीं देख घृणा भी करते हैं, परन्तु उस ज्ञान–संतोषीको इस बातकी कुछ भी परवाह नहीं है। यह निज आत्मीक व्यापारमें चतुर हो, अपने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका अवलम्बन कर, अपनी शुद्ध भावनाकी भट्टी जला, ज्ञान–वैराग्य–रसको पका पकाकर स्वामृत-मय मनोहर व्यञ्जन तय्यार कर करके स्वयं भी खाकर अपनी अनादिकी क्षुधा–वेदना मिटाता है और अन्योंको भी वह सुंदर सलोने शब्दरूपी दोनोंमें धर कर देता है और उसके बदलेमें पाने वाले भी अपनी भाव–भक्तिको सुन्दर शब्दोंके द्वारा उसे प्रदान करते हैं। इस व्यापारके करते रहनेसे इस अंतरात्माको बहुत बड़ा अभ्यास हो जाता है, जिससे यह जगतमें ज्ञानवानोंकी श्रेणीमें मान्य हो जाता है। इस उद्यमके बलसे यह जब प्रचुर आत्मीक धनका धनी हो जाता है तब देन लेनके व्यापारसे छुट्टी पाकर परम संतोषित हो अपने स्वधनके मानमें उन्मग्न हो जाता है, फिर किसीकी इच्छा न रख अपनी स्वाभाविक सम्पत्तिके बलसे शिव–तियाको ही रंजायमान करनेकी कोशिष करता है। इस तरह चेष्टित हो विघ्न-कारक कर्मोंको अतिशयरूप धर्मध्यानके बलसे क्षय करता हुआ शुक्लध्यानमें पहुंच जाता है और प्रथम शुक्लध्यानके तीव्रतम बलसे मोहशत्रुका क्षयकर द्वितीय शुक्लध्यानके द्वारा

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अंतराय कर्मोंका नाशकर, स्वाभाविक सुखको पाकर तथा शिवरमणीसे संभाषण कर जीवन्मुक्त हो **अनुभवानन्द**का अनुपम स्वाद लेता है।

निजगुण गणना।

(३८)

परम पुरुषार्थधारी, शिव–विहारी, ज्ञानानन्द-रस-संचारी, सम्यग्दृष्टी आत्मा जब अपने आत्मीक धनकी गणना करता है तब गणना करते करते कभी भी अंतको प्राप्त नहीं होता। अपनी शक्तिकी हीन प्रगटताके कारण थोड़ीसी ही गणना करके थक जाता है और आराम लेनेके लिये अपने शुभ गुणोंसे अन्य अनेक शुभ भावोंकी गणनामें लग-जाता है, परन्तु ऐसा करते हुए भी इसको अपने आत्मीक धनकी गणनाका ख्याल छूटता नहीं। इस कारण तुरंत ही निज शक्तिको सम्हार निज धनकी गणनामें लवलीन हो जाता है। यही जाप भवताप-को शांत कर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें शांत कर देती है और अपने प्रत्येक सम्मेलनमें इस जापी आत्माको स्वामृत–रसकी एक बूंद प्रदान करती है। जिस बूंदका स्वाद ले यह स्वस्वादी दूसरी बूंदके लिये फिर उत्सुक हो जाता है जैसे संसार–कूपमें पड़ा हुआ पथिक मधुमच्छिकाके छत्तेसे गिरे हुए एक विन्दुको चखकर उसकी आशामें फिर मुँह फैलाए रहता है और आप भयानक अजगर-के मुखमें गिरनेको है, इस बात को नहीं गिनता है; उसी तरह

यह स्वरस–वेदी संसार पतनसे निर्भय रह निज रस विन्दुकी आशा करता है, परन्तु यह सम्यक् पुरुषार्थी है, इससे मात्र आशा ही करके चुप नहीं हो जाता है। इसकी रुचि इसको शीघ्र ही स्वसंवेद–रसका अनुभव कराती है। त्रिलोकके षट्द्रव्यमय पदार्थोंको सम्यक् श्रद्धानमें रखनेवाला यह सुधी उन सम्पूर्ण पदार्थोंमें किसी तरहका भी सांसारिक राग और द्वेष नहीं करता है, कि जिन पदार्थोंको मिथ्या-दृष्टी सम्बन्ध करके अपने मान लेता है तथा मनको प्यारे पदार्थोंमें राग और असुहावने पदार्थोंमें द्वेष करता है। यथार्थ वेदी ही वास्तवमें आत्मज्ञानी और सुखमई है। वही वीतराग–विज्ञानतारूपी अपूर्व शक्तिमई देवीका सच्चा उपासक है। वही परम उत्सवमई आत्मीक अखाड़ेमें समस्त त्रिलोक जन–समूहके सन्मुख ज्ञानानन्द नाम नृत्य करके उसी तरह अपने मोक्ष–राजाको रिझाता है, जिस तरह इन्द्र जन्मोत्सवके समय श्रीतीर्थंकर प्रभु और उनके माता पिताके सन्मुख आकर आनंद नाटक करके आनन्द करता है। यह समयसारका नाटक परमसुखरूप है। जो इस नाटकके रसिया हैं–वे इस दुःखरूप भवातापके अन्दर निवास करते हुए भी मोक्ष-वासकेसे परमाल्हादके भोक्ता हैं। यह बात बिलकुल सत्य है कि अनंत गुण पर्यायधारी आत्माका स्वरूप स्याद्वादके द्वारा सम्यक् निश्चय कर जो कोई जीवात्मा स्वात्म स्वभावमें लवलीन होकर विषय कारकोंसे हटता है और पुनः पुनः शुद्धात्मानुभवको भावना करता है, हुआ तीव्रतम स्वात्मानुभव करके **अनुभवानन्द**का स्वाद लेता है।

न कर्त्ता हूं न भोक्ता हूं।

(३९)

मैं बंधा हूं व खुला, मैं संसारी हूं व सिद्ध, मैं क्रियावान हूं व अक्रिय, मैं सरागी हूं व वीतरागी, मैं मूढ़ हूं व चतुर, मैं दुष्ट हूं व सज्जन, मैं कर्त्ता हूं व अकर्त्ता, मैं भोक्ता हूं व अभोक्ता, मैं सूक्ष्म हूं व स्थूल, मैं अनेक हूं व एक, मैं क्रोधी हूं व शान्त, मैं नित्य हूं व अनित्य, मैं दृश्य हूं व अदृश्य, मैं आगमज्ञ हूं व स्वभावज्ञ, मैं लोभी हूं व संतोषी, मैं जन्मा हूं व अजन्मा, मैं सुखी हूं व दुखी, मैं वर्णवान हूं व अवर्णवान इत्यादि अनेक वचनके जालोंको इन्द्रजालकासा फैलाव समझकर जो कोई उन्हें दूर करता है और इन विकल्प-जालोंसे अतीत निजरसमय साक्षात् स्वभावमें स्फुरायमान ज्ञान ज्योतिको ही ग्रहणकर सम्पूर्ण लोकालोकके पदार्थोंके सम्यक् कारण और कार्यका ज्ञाता होता हुआ अपनी शुद्ध चैतन्यमयी जातिसे ही नाता करता है और उनसे स्वरस-वेदनका आनन्द परस्पर लेता देता है वही आत्मा तत्त्वज्ञानी और आसन्न-भव्य है। यही स्वभाव-खोजी अपनी उपयोग परिणतिरूपी जलको त्रिलोक-बनसे समेटकर अपने स्वरूपके ज्ञानमई नीचे खाड़ेमें भरकर अटूट अमृतके भंडारका धनी होता है और उस धनके सुखमय मदमें ऐसा उन्मत्त हो जाता है कि रंच मात्र भी अन्यकी परवाह नहीं करता। एक निज अनुभूतिका ही प्यारा रहता है और उसीमें रति करता है। दृढ़ सम्यक्तकी अचल महिमा उसके स्वरूपमें

प्रतिभा समान होती है। वह ज्ञानी अपने आनंद अनुभवरूपी राज्यका राज करता है और स्वतंत्र अतींद्रिय होकर इंद्रिय विषयोंकी परवाह रखता नहीं। स्वमनको स्वमननमें मगन कर स्वरूपावलम्बी रहता है। इस ध्यानी भेद–ज्ञानीकी शक्ति जैसे स्वात्मश्रेणिके आरोहणमें उत्साहित होती है, ऐसे ही परको स्वात्मसुधारमें स्थिरीभूत करनेके लिये इसकी वचन–प्रणाली बहुत ही दृढ़ कार्य करती है। जैसे वचनमें दृढ़ता अपूर्वता प्रगट करती है, ऐसे ही इसके शरीरसे प्रतिपादन किये हुए समस्त कार्य सम्यक् परको अबाधाकारी और न्याय मार्गकी ओर झुके हुए होते हैं। व्यवहार प्रवृत्ति भी ज्ञान वैराग्यसे पूर्ण होती है, जिस निमित्तसे इस आत्माको अपराधी बननेका बहुत कम भय रहता है। वास्तवमें यह बात सत्य है, जो ज्ञाता दृष्टा रहता है और कर्तव्यपनेके अथवा भोक्तापनेके अहंकारको नहीं करता है, उसको बंधनमें पड़नेकी शंका ही क्यों हो ? जो पर-क्रियाको आपकी क्रिया-श्रद्धान करता है वही अपनी मिथ्याबुद्धिसे परका कर्ता और भोक्ता बनता है तथा इस अपनी असत् बुद्धिसे वृथा संक्लेश उठाता और कर्मोंको बांधता है। शुद्ध नयकी डोरको दृढ़तासे पकड़े हुए, जो जगत्में क्रिया करता है वह क्रिया करता हुआ भी अक्रिय है। भेद-ज्ञानका निर्मल जल उसके अंतरंगमें निरंतर बहा करता है। धन्य है! यह शांत जल कि जिसकी ठंडक इसको संसारके क्षणिक आतापोंसे पृथक रखती है। तथा इसके आत्माको वैसी ही आल्हादता देती है कि जैसे पूर्णमासीके चंद्रमाकी कला दर्शकको हर्ष उत्पन्न करती है। इस परमानन्दके

विलासमें तल्लीन होकर यह अंतरात्मा वीतराग-विज्ञानी रहकर तथा शिव-तियाके मोहमें रति करके निरंतर अनुभवानंदका स्वाद लेता है।

गतिमार्गणामें मैं ही हूं।

(४०)

त्रिलोकका स्वामी, शिव-रमनीका वर, आत्मीक अनंत गुणरूप धनका धनी वास्तवमें मैं ही तो हूं। मेरा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य्य मेरे ही में हैं। मेरे निवासका स्थान मेरे ही आत्माका असंख्यात प्रदेशमयी चैतन्य नगर है। मैं गतिमार्गणासे भिन्न हूं। मुझे कोई चारों गतियोंके स्वांगोंमें ढूंढ़ा चाहे तो मैं कहीं भी नहीं मिल सक्ता हूं। इन गतियोंका हेतु, स्वरूप, कार्य्य, और फल समस्त ही मेरी निर्मल शुद्ध परिणतिसे विपरीत है। अहमिन्द्र, इन्द्र तथा सुर असुर सर्व ही निज स्वभावसे भिन्न पर पुद्गल कर्मरूपी वर्गणाओंके निमित्तसे अपने २ रूप, पद, कार्य्य और स्थानमें लवलीन हैं। उनकी सारी क्रीड़ा, उनका सारा भ्रमण, उनकी सारी धर्मक्रिया मेरी शुद्ध पारिणामिक क्रियासे सर्वथा विरुद्ध है। चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव आदि सर्व ही नर अपने २ पुद्गलोंके अहंकारमें अथवा यदि वैराग्य हुआ तो उनसे वैराग्य भाव भजनेमें परकी ही चिन्ता करते हुए मेरी स्वाभाविक निश्चलतासे पराङ्मुख हैं। अष्टापद सिंह, गज, अश्व, मयूर, महामत्स्यादि थलचर, नभचर, जलचर तथा समस्त ही द्वीन्द्रियादि विकलत्रय व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पति, तथा साधारण निगोदराशी आदि प्राणधारियोंके शरीर और

चेष्टाओंमें झांककर देखा जाय तो सर्व ही पुद्गलका नाट्य कर रहे हैं। उनका यह नाट्य मेरे समयसारके अद्भुत नाट्यसे सर्वथा निराला है। सातों नरकके नारकी निरन्तर अशुभ शरीर, अशुभ विक्रिया, अशुभ परिणाम और कषायके वशीभूत हो परस्पर मारण, ताड़न आदिकी कुक्रिया करते व दुःखसे विलाप करते हैं तथा परस्पर छेदे भेदे जाते हुए भी अपने स्थूल शरीरको नहीं त्याग सकते हैं। ऐसे नारकियोंकी आकुलतामई चेष्टायें मेरी निराकुल स्वानन्दरूप स्वधाम अभिराम गुणग्रामकी स्वभाव भोगनेरूप क्रियासे बिलकुल अनोखी है। चारों गतियोंमें मार्गणा करनेसे मेरा पता किसीको भी मिलना दुश्वार है। यद्यपि मैं गतिसे भिन्न सुगतिरूप और निर्द्वन्द्व हूं तथापि यदि कोई चर्म दृष्टि बन्दकर सम्यग्ज्ञानकी दृष्टिसे इन चारों गतियोंमें भी मुझे देखना चाहे तो मैं अवश्य दिखलाई दिया जा सकता हूं। यद्यपि चारों गतियोंके प्राणधारियोंकी भिन्न २ आकृति और क्रियायें हैं, परन्तु सम्यक्तीको तो मैं इन गतियोंके भीतर भी एक रूप शुद्ध ही दृष्टि गोचर हूंगा। वास्तवमें मेरा आकार, मेरा गुण, मेरा स्वरूप, मेरी पर्य्याय यथार्थमें जैसीकी तैसी ही रहती है। क्या कभी सूर्य्यका तेज मेघाडम्बरके आनेसे जाता है? क्या कभी रत्नकी ज्योति मिट्टीसे लिप्त हो जानेपर मटियाली होती है? क्या कभी सालिका चाँवल भूसीमें लिप्त रहनेसे भूसीरूप होता है? क्या कभी तैजस शरीर समस्त संसारियोंमें लीन रहनेपर भी अतैजसरूप परिणमता है? क्या कभी चंदनका काष्ठ अन्य काष्ठके साथ जलने-पर भी अपनी निराली सुगन्धको त्यागता है। निश्चयसे मेरी शुद्ध

अनुभूति नित्य ही मेरे साथ रहती है। मेरी अनुभवशक्तिका घात कोई कर नहीं सकता। चाहे मैं चारों गतियोंकी ८४ लाख योनि और १९७॥ कोड़कुल कोड़ीमें भ्रमण कर आऊं, परन्तु मेरे गुणोंको कोई क्षीण करनेवाला नहीं है। मैं अपनी स्वाभाविक सम्पदाको लिये हुए नित्य ही संतुष्ट रहता हुआ और अपनी अनुभूति सखीसे गोष्टी करता हुआ स्वभावसे ही अनुभवानन्दका स्वाद लेता हूं।

इन्द्रियमार्गणाकी ओछी शक्ति।

(४१)

अतीन्द्रिय आत्मारामका रचा हुआ आराम अत्यन्त मनोहर, सुखप्रद, गुणशाली और चिंतातीत है। इस मनोहर आरामें परमात्माराम विश्राम करता हुआ शिव–नारीके सातामय स्पर्शका भोगकर अटूट अमृतके स्वादको लेता हुआ इन्द्रियग्रामोंमें परिभ्रमण करके उनकी सैर देखनेका कभी विचार ही नहीं करता। वास्तवमें आत्माराम इन्द्रियमार्गणासे सर्वथा भिन्न है। मतिज्ञानावरणीयकर्मके और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमको अनादि कर्मबंधकी संतानका भोगनेवाला संसारी जीव कारण पाकर एकेन्द्रीकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतीकी कायमें मात्र एक स्पर्श इन्द्री प्राप्तकर उत्कृष्ट ४०० धनुष दूर (४ हाथका धनुष) क्षेत्र तकके पदार्थोंके कोमल, कठोर, हलका, भारी, रूखा, चिकना, उष्ण, शीत इन आठ स्पर्शित विषयोंको मूर्च्छा बुद्धिसे ग्रहण करता हुआ दुखी सुखी होता है। धन्य है! यह अतीन्द्रिय आत्मा, जिसको यह आकुलतामई पराधीन क्षणिक

सुख दुःख नहीं हैं। दो इन्द्रीकी त्रस पर्यायको धारते हुए विकलेन्द्रिय जीव उपरोक्त कर्मके क्षयोपशमसे उत्कृष्ट स्पर्श करने योग्य पदार्थोंके विषयोंको ८०० धनुषक्षेत्र तक की दूरीसे तथा स्वादने योग्य पदार्थोंके रस विषयको ६४ धनुषतककी दूरीसे जानकर मोहित हो अपने आत्मीक अनुभवके ज्ञानसे पराङ्मुख रहते हैं। धन्य है शिवरमणीका वर कि जिसको इस पराधीनताके जालसे मुक्ति होगई है। तीन इन्द्रीधारी चींटी आदि त्रसजीव निज. कृत कर्माधीन पड़े हुए मानों कर्मके मदसे स्वयं चकनाचूर हुए स्पर्शने योग्य पदार्थोंको उत्कृष्ट १६०० धनुष तकके क्षेत्रसे स्वादने योग्य पदार्थोंको उत्कृष्ट १२८ धनुष तकके क्षेत्रसे तथा सूंघने योग्य पदार्थोंको उत्कृष्ट १०० धनुष तकके क्षेत्रसे जानकर तन्मय हो अपनी पर्य्यायको शीघ्र पूर्णकर पर्यायांतर होते हैं। खेद है, इन विचारे विषय-ग्रहणमें रात्रिदिवस परिश्रम करनेवाले जीवोंको स्वात्मतन्मयताकी गंध भी प्राप्त नहीं होती। चार इन्द्रीवाले मक्षिका, भ्रमर आदि जीव आत्मरुचि-कारण मानसिक वृत्तिको न प्राप्त किये हुए उत्कृष्टतासे स्पर्शने योग्य पदार्थोंको ३२०० धनुष दूर क्षेत्रसे, स्वादने योग्य वस्तुओंको २५६ धनुष दूर क्षेत्रसे, सूंघने योग्य वस्तुओंको २०० धनुष दूर क्षेत्रसे तथा देखने योग्य पदार्थोंको २९५४ योजन दूर क्षेत्रसे मालूमकर उनके मोहमें आपेकी किसी समय भी खबर न रखते हुए क्षोभित होते हैं। धन्य है! निजानन्दी जीव जिनको इस क्षोभके फन्दमें पड़नेकी आवश्यक्ता नहीं है। पांच इन्द्रीवाले जीव सत्यासत्य हिताहित विचारशक्ति-धारक मनको न पाकर और

त्रिलोकालोक ज्ञाता परमात्माके दर्शनसे विमुख रह उत्कृष्टतया स्पर्शने योग्य पदार्थोंको ६४०० धनुष दूर क्षेत्रसे, रस लेने योग्य पदार्थोंको ९१२ धनुष दूर क्षेत्रसे, सूंघने योग्य पदार्थोंको ४०० धनुष दूर क्षेत्रसे, देखने योग्य पदार्थोंको ९९०८ योजन दूर क्षेत्रसे तथा सुनने योग्य पदार्थोंको ८०० धनुष दूर क्षेत्रसे जान मूर्छित बुद्धिकर उनके रागमें तन्मय रहते हुए स्वरस–स्वादका लाभ नहीं करते हैं। परन्तु पंचेन्द्री जीव मनका धारी होकर भी अर्थात् उत्कृष्ट तीर्थंकर चक्रवर्ती जीव होकर भी तथा स्पर्शने योग्य, स्वादने योग्य, और सूंघने योग्य पदार्थोंको नौ नौ योजन दूर क्षेत्रसे तथा देखने योग्य पदार्थोंको ४७२६३$\frac{१}{७}$ योजन दूर क्षेत्रसे*, तथा सुनने योग्य पदार्थोंको १२ योजन दूर क्षेत्रसे मालूम करके भी तृप्त नहीं होते और अपने मनमें इस बातकी ईर्षा करते हैं कि श्रीअरहंत सिद्धपरमात्माके सदृश हमारेमें ऐसी शक्ति क्यों नहीं पैदा हो जाती है? जिससे हम तीन लोकके समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें बिना इन्द्रियोंकी सहायताके ही उनके समस्त विषयोंसहित जान लेवें और इस कारण आकुलताओंके प्रपंचोंसे दूर नहीं होते। वास्तवमें क्षयोपशम ज्ञान और क्षयोपशम वीर्य्यकी गम्य कहां तक हो? पुद्गलके विकारोंका सम्बन्ध आत्माको विकारी बनाता है। ऐसे सम्बन्धका मोह ही आत्माको पराधीन, दुःखी, रागी, द्वेषी और आकुलित करता है।

---

*नोट—तीर्थंकर चक्रवर्ती जब अयोध्याजीके महल ऊपर खड़े हों तो सूर्यको निषिध पर्वतके ऊपर सदृश स्थानमें स्थित देख सक्ते हैं, इसकी दूरी अयोध्यासे ४७२६३$\frac{१}{७}$ योजन होती है।

धन्य हैं! वे वीर आत्मा, जो वैराग्यकी मनोहर छटाको प्राप्तकर भेद-ज्ञानकी अग्नि—जला कर्मकाण्डको भस्मकर आत्माके पगको मुक्त करते हैं और निज अनंतगुण वृक्षोंसे प्रफुल्लित बागमें कल्लोलकर निज अनुभूति दासीकी सहायतासे शिव—तियासे परम पवित्रतासे वार्तालाप करते हुए निज अनुपम आत्मीक **अनुभवानंद**का स्वाद ले उन्मत्त रहते हैं।

कायमार्गणामें आकुलता।

(४२)

सुख संतोषी, ज्ञान ध्यान तपमें लीन, ब्रह्मविद्या—अभ्यासी, शुद्ध निश्चय दृष्टिसे परमात्मा, व्यवहारमें स्वपदसे पृथक्भूत अंतरात्मा अपने अद्भुत ज्ञानके बलसे किसीपर पदार्थ संबंधी राग और द्वेषको अपनेमें नहीं आने देता है। दृढ़ अचल सुमेरुके समान निज अनुभूतिमें तन्मयताको कायम रक्खे हुए विना तृप्ति प्राप्त किये सुधाके उच्च श्रोतसे अमृतकी धाराका पान किया करता है। अपने आत्माको चैतन्यमई कायके अन्दर निज अनुभूति अर्द्धाङ्गिनीको लिपटाए हुए ऐसा स्वरूप मूर्छित रहता है कि अपनी जड़मई कार्योंकी परवाह ही नहीं करता। औदारिक, तैजस, कार्माण—इन तीनों शरीरोंमें समय २ अनंते कर्म नोकर्म वर्गणाओंका मिलना और बिछुड़ना होते रहनेपर भी इन कार्योंका उपादान कारण जड़को अनुभव कर इन जड़ोंके हानि लाभसे अपनी हानि न करता हुआ अपने चेतनरामको अलग रखता है। धन्य है! यह शूरवीर जो अपनी परिणति **कायमार्गणामें** न चलाकर स्वरूप मगन रहता है।

जिस कायमार्गणामें भ्रमते हुए एकेन्द्री—पृथ्वी, जल, तेज, वायु-कायिक जीव क्रमसे मसूर व चनेके सदृश गोलाकर, जल—बिन्दु सदृश गोल, सूची (सुई) सदृश ऊर्द्ध बहुमुख, ध्वजा सदृश चौकोर आकारवाले सर्व ही उत्कृष्ट व जघन्य घनांगुलके असंख्यात भागमात्र अवगाहनाको घेरे हुए निगोदरहित ऐसे अदृश्य शरी-रको रक्खे हुए कि जबतक इनके बहुतसे शरीरका समूह न मिले तबतक इंन्द्रिय—गोचर न हों, मूर्च्छित रहते हुए जड़मई बने रहते हैं; उस कायमार्गणामें उस अनुभवीका गमन नहीं होता। जिस एक जीव वाली प्रत्येक अप्रतिष्ठित व अनेक बादर निगोदजीव आश्रित सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जघन्य घनांगुलका असंख्या-तवां भाग वाली तथा उत्कृष्ट १००० योजन (छोटा) लंबी, एक योजन चौड़ी गोल कमलकी कायमें पड़े हुए संसारी जीव छेदन भेदन आदिके दुःख सहते हुए आकुलित रहते हैं, उस कायके मोहमें आत्मानंदीका पतन नहीं होता; दो इन्द्री जीव जघन्य घनां-गुलका संख्यातवां भाग अनुंधरीकी व उत्कृष्ट १२ योजन लंबी संखकी पर्यायमें; ते इन्द्री जीव जघन्य कुंथु हो अनुंधरीसे संख्यात गुणी व उत्कृष्ट ग्रीष्मकालमें त्रस जीव हो ३ कोस लम्बी कायामें, चौइन्द्री जघन्य काणममक्खी हो कुंथुसे संख्यात गुणी व उत्कृष्ट एक योजन लम्बी भ्रमरकी कायामें, पंचेन्द्री जघन्य सिक्थक मत्स्य हो काणममक्खीसे संख्यात गुणी व उत्कृष्ट तीन पल्यके शरीरमें पैदा हो शरीर—मोही रह मिथ्यादर्शनके कारण मूर्छा और वियोगसे दुःख पाते हैं, परन्तु हर्ष है कि स्वात्म अवलोकी सम्यग्दृष्टीको इस

दुःखका अनुभव नहीं है। जो भेद–विज्ञानके शस्त्रको धोर हुए शूर-वीरताका जल पीते हैं, उनको कायकी सुरूपता व कुरूपता कुछ भी असर नहीं करती। सनतकुमार चक्रवर्ती और उनके रूपके मोही देवोंके समान यौवनकी क्षणभंगुरताका विचार कर अपूर्व यौवनधारी निज जीव तत्त्वके विलासमें आनन्दित रहते हुए समता–नदीके जलको पीते हुए राग द्वेष शत्रुओंको वैराग्य मंत्रसे दूर दूर रखते हुए स्वरूपगुप्त हो हर्षित होते हुए सदा अनुभवानंदका स्वाद ले चिरसुखी रहते हैं।

मैं अकाय हूं।

(४३)

निज रस–कूप, शिवनगरी–भूप, चैतन्यरूप, अविनाशी परमात्मा-के मननमें मोहित हो भव्य अंतरात्मा आत्मसत्ताके रमणीय काननमें पहुंच जाता है और उस काननके अंगरूप अनंत गुणमई अनेक वृक्षोंको क्रम क्रमसे अवलोकन करता हुआ अपनी स्थिति अपना आचरण ऐसे मनोहर बनमें जान जान अपने चित्तको प्रसन्न करता है। प्रसन्नताके साथ एक आश्चर्य्य भी करता है कि इस आत्म–बनमें एक २ गुणरूप वृक्षके प्रदेश अर्थात् स्थानमें अपने अन्य सम्पूर्ण गुण–तरुओंकी सत्ता मौजूद है। एक वृक्षकी सुन्दरतामें अनंत वृक्षोंकी सुन्दरता झलकती है। इस अतिशयरूप बनके प्रभावसे इस अंतरा-त्माको आत्माका ही विचार है, उसीमें अपने परिणमनको करे हुए है। मेरे कार्माण, तैजस व औदारिक शरीर हैं कि नहीं, इस बातके

विकल्पसे अलग रहता है। वास्तवमें यह शरीर पुद्गलकी वर्गणाओंसे ही उत्पन्न हैं। जिस पुद्गलमें स्पर्श, रस, गंध, वर्णके २० गुण हैं वे गुण आत्मामें कोई भी नहीं हैं; न यह क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य शूद्र है। यह सब नाम शरीर ही के हैं, आत्माके नहीं। जिस शरीरका निरन्तर पूरण गलन स्वभाव है, जो भीतर मलमूत्र आदिसे भरा है, जो स्वयं अपवित्र और जो इसका स्पर्श करे उसको अपवित्र करनेवाला है; ऐसे तनमें निस्पृह हो जो चैतन्य तनकी पवित्रतामें तन्मय रहता है, अकायी रहकर स्वसमयके स्वादमें मग्न रहता है, ऐसे अनुभवीको अहमिन्द्रोंका वैक्रियक शरीर भी भिन्न ही प्रतीत होता है और वह तीन कालमें भी ऐसे तनकी कामना नहीं करता। जब जड़ तन ही भिन्न है तब तनके सम्बन्धी माता, पिता, भाई, बन्धु, पुत्र, स्त्री, पुत्री, धन, धान्य, क्षेत्र, महल, आदि सर्व ही आत्मस्वरूपसे पृथक् हैं। जो मोही इनके मोहमें पड़ अपने स्वरूपको भुलाता है—वह अपना ही शत्रु, द्रोही और अपना ही अकल्याण करनेवाला है। निज रस—रसियाको कोई पर रसके स्वादकी चिन्ता नहीं होती—वह रसिक स्वसंवेदन ज्ञान, अमल, गुणवान्, भवदधि—तारणयानपर आरूढ़ हो समय २ विशुद्ध भावोंमें बढ़ता जाता है, और अपने सुखरूप स्वरूपमें लवलीन रह शिव—नारीको मोहनेवाले अद्भुत आकर्षणमें प्रवेशकर क्षणिक सुखोंसे अतीत सार समता स्वरूप अनुभवानन्दका ध्यान करता है।

———

योगमार्गणामें डगमगाहट ।

(४४)

भवाटवी—भ्रमणकारी, संसारी, परम समताधारी, स्वपदरुचि-विस्तारी, भवहारी, सर्वज्ञ, वीतराग गुणधारीको न पाकर, भव—जालमें फंसा रह कर, चारों गतियोंमें अपने योग्य शरीर धार; योगोंकी परणतिमें उलझा हुआ; अयोग, अलिप्त, अनंत, अमिट, अपूर्व तथा आनन्दमय पर्य्यायको नहीं प्राप्त करता है । यही इसकी गफलत इसको सदा ही दुःख देनेवाली है। **योगमार्गणामें** पड़ा हुआ पर पदार्थको अपनेमें आकर्षण करता है और अपने स्नेह व अस्नेह भावके निमित्त स्वयं कर्मबंधका रोग पीछे लगा रोगी बनता है। परिपाटी रूप अनादि और सम्बन्ध वियोगकी अपेक्षा सादि पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे संसारी जीव अपनेमें जो ज्ञानावरणादि कर्म और औदारिकादि नोकर्मकी वर्गणाओंको ग्रहण करनेकी शक्ति रूप **भावयोग** और ऐसे आत्माके प्रदेशोंका परिस्पन्द नाम हलन चलनरूप **द्रव्ययोग** रखता है। तथा जिस योगके १५ भेदोंमें फंस जाता है, इस कारण वह अपनी स्वतंत्रतासे विमुख हो आप ही दुःख उठाता है। सत्यार्थ ज्ञानको पैदा करनेकी शक्तिरूप मानसिक भाव व वचन, तथा इसका विरोधी भाव व वचन, सत्यासत्य मिश्रित भाव व वचन, तथा सत्यासत्य कहे जानेकी शक्तिसे रहित अवक्तव्य, ऐसे सत्य, असत्य, उभय, अनुभय चार भेदरूप, मन व वचन योगके ८ भेद तथा औदारिक, औदारिकमिश्र (अपर्याप्त अवस्थामें), वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और

कार्माण ऐसे ७ काय सम्बन्धी योगोंकी विक्रियासे वृथा ही पर पदार्थ द्वारा अपने आत्म–प्रदेशोंको डगमगाता है। सत्य और अनुभय वचनयोगसे प्रगट की हुई दिव्यध्वनिके द्वारा आत्मधर्मकी प्रगटता होती है, जिसको व्यवहारी जन पाकर व्यवहारकी सीढ़ीसे निश्चयकी ओर मुख करते हुए चढ़ते हैं और योगोंके हलन चलनसे रहितपना पाकर अयोगी हो सिद्धालयमें निवास करते हैं। प्रकृति और प्रदेशबंधका कारण योग है, ऐसा जानते हुए भी इसकी कुछ परवाह न कर योगीश्वर ध्यानके द्वारा निश्चलता प्राप्त करते हुए स्वरूप मगन रहते हैं तथा परम प्रतापी आत्मारामके सद्गुण पुष्पोंकी सुगंधता लेते हुए ऐसे मोहित हो जाते हैं कि फिर जगत्के पौद्गलिक पुष्पोंकी कभी परवाह रखते नहीं। निज अद्भुत सत्तामें निवास करते हुए उसी भूमिमें ही चलना योग्य समझते हैं, तथा उससे बाहर किसी भी पर वस्तुकी सत्तामें गमन करते नहीं। निज-सत्ता गुणरत्नोंसे जड़ित परम सुखदाई है, यही इसका स्वपद और स्वरूप है। जो इस स्व पदमें निरालम्ब हो ठहरते हैं वे महा रमणीक सुख भाजन वीतरागमई पर्वतपर आत्मज्ञान सिंहासनपर बैठ जाते हैं और अष्ट कर्म–जालसे रहित तैजस वर्गणा विहीन आत्मस्वरूपकी शुद्धताका मनन करते हुए विनाशिक रसोंसे रहित अरस, अगंध, अस्पर्श, अवर्ण और अशब्द स्वरस सुधापुंज समूहका विलास करते हुए, पर अनुभवसे रहित सत्य **अनुभवानंद**का स्वाद लेते हुए परम तृप्त रहते हैं।

वेदमार्गणाकी आकुलता।

(४९)

शशि सम उज्ज्वल गुणधारी, अविकारी, अत्यन्त निकट भव्य जीव कुमुद विस्तारी, अज्ञान–निशि–तम–हारी, भवाताप–संतप्त, सत्त्व शमनकारी, परवस्तु आधाररहित निराधार परिणति आकाश विहारी, अनंत गुणकला भंडारी, परमात्मा सदृश अंतरात्मा आज सम्पूर्ण त्रिवेदरूप तीव्र संक्लेशतासे रहित हो वेदरहित मुक्त–तियाके स्मरणमें दत्तचित्त हो रहा है और अपनेको संसारमें रहते हुए भी संसारावस्थासे पृथक् मान रहा है, जिस वेदमार्गणामें भ्रमण करके यह अज्ञानी जीव अपना संसार बनाता है, उस वेदके विचारको जब हेय निरीक्षित किया जाता है तब स्वतः स्वभाव ही अन्तरात्माका पग मोक्ष–मार्गमें बढ़ता चला जाता है। जिस पुरुष वेदकी तीव्रताने **त्रिखंडी रावण**को विध्वंस कर नर्कवास दिया; व ग्यारहवें रुद्र **सात्त्विक**का स्पर्श चिन्ह छिदवा भ्रष्ट करा, नर्क पहुंचाया; व **दुःशासन**को सभामें अपमानित करा कुगति धाम बसाया; तथा जिस पुरुष वेदके मोहमें पड़े संसारी जन स्त्रीमें लुब्ध हो निज–शीलरत्नको मलीन करते हैं, उस पुरुष वेदको निज अरि जान जो त्यागते और ब्रह्मस्वरूपमें रमन करते–वे सच्चे अंतरात्मा ब्राह्मण और ब्रह्मचारी हैं। जिस स्त्री वेदकी उत्कटताने **चन्द्रनखा**का मन एकाएक पुत्र शोकसे हटा उसे **श्रीरामचन्द्र** महात्माके रूपमें लुब्ध करा अपमानित और यहां तक क्रोधित कराया कि उसका यही क्रोध महासती **सीता**पर उपसर्ग पड़ने, राक्षसवंशके क्षय होने तथा असंख्यात वीरोंके युद्धमें नाश

होनेका कारण हुआ व जिस स्त्रीवेदकी तीव्रतासे चम्पापुरकी रानीने श्रीसुदर्शन सेठ ऐसे शीलवान्को शूलीपर बिठवाया व जिस वेदके तीव्र मोहमें पड़ स्त्री–समाज कामवेदनासे आकुल हो निज निजानन्द अविनाशी शिवनाथके मोहसे छूटी रह सांसारिक पुरुषोंकी इच्छा कर नर्क, तिर्यंच योनि वास करती हैं, उस स्त्रीवेदको हेय समझ जो जीवात्मा त्याग करते हैं वे ही निर्वेद अवस्था प्राप्तकर स्वात्म स्वरूपमें मगन होते हैं। जिस नपुंसक वेदमें पड़े नारकी, नर और तिर्यंच कामकी तीव्र ज्वालासे दग्धायमान होते हुए सम्यग्दृष्टिका लाभ न कर आत्मस्वरूपको नहीं पहिचानते उस खंड वेदको सर्वथा हेय समझ अंतरात्मा आंतरिक मनोहर वृत्तिका अवलम्बन ले सुखिया स्वभाव धारण करते हैं। जो इस शरीर, शरीरके अवयव और इन्द्री विषय रागद्वेषादि कषाय–इन सर्वको अपने स्वरूपसे पृथक् जानते, मानते और अनुभव करते हैं, वे जीव भवकारी निराकुलताहारी सुखोंसे अतीत भवहारी निराकुलताकारी अनुभवानंदका सुधामय रस पी अत्यन्त तृप्त रह कृतकृत्यका अम्बर ओढ़ दिगम्बरपनेकी महत्त्वता प्रगट करते हैं।

कषायोंकी वंचकता।

(४६)

परब्रह्म–स्वरूप–विकाशी, सम्यक् आनन्द–अभिलाषी; ज्ञान, दर्शन, सुखवीर्य्यपद–प्रकाशी, भवतमनाशीकी सुधामय मूर्तिका अवलोकन भव्यजीव सम्यक्दृष्टीके तनमें रोमाञ्चितता उदयमान

करता हुआ एक ऐसा शान्त जलका प्रवाह बहाता है कि, जिसकी अमलधारा कर्मवर्गणाओंके शिथिल और ध्वस्त समूहको आत्म प्रदेशोंकी बन्ध अवस्थासे एकाएक हटाती हुई, आत्माको हल्का करती हुई मोक्ष विमानमें निज निष्कंटक राज्य करनेके लिये योग्य बनाती जाती है। वीतराग विज्ञान पतिका स्पर्श अनुभूति नारीको ऐसा अनुपम बल प्रदान करता है कि, मोह राजाके चाकर चार कषाय सब योद्धाओंको आक्रमण और उनका भ्रमजाल इस अनुभूतिको अचेत नहीं करता तथा सचेत अवस्थामें रखकर मोहके जालोंसे बचनेका अपूर्व बल प्रगट करता है। संसारासक्त जीवोंका भ्रमण **कषायमार्गणामें** ऐसा प्रबल रहता है कि बाह्यमें कषाय-रहित वैरागी दीखनेपर भी अनंतानुबंधी किसी भी कषायकी उत्कटता—उस जीवका पीछा नहीं छोड़ती। द्रव्य लिंगी मुनि व्यवहार चारित्रको शास्त्रोक्त यथार्थ पालते हुए तथा यथार्थ मार्गका उपदेश दे हजारोंको सम्यक् मोक्ष—पथपर चलाते हुए भी कषाय वैरी द्वारा ऐसे दबाये जाते हैं कि श्रावक धर्मकी प्रथम सीढ़ी सम्यक्त अवस्थाको न पा भवविपिनके त्रासोंको नहीं दूर कर सक्के। देवोंको तीव्र लोभ तथा नारकियोंको तीव्र क्रोध अन्य कषायोंकी अपेक्षा अधिक विह्वल रखते और पौद्गलिक वासनाओंसे परिणामोंको हटने नहीं देते। परन्तु जिन देव व नारकियोंके अंतरंगमें भेदज्ञानका दीपक जलता है, उनको कषायोंकी पवन अंधकारमें नहीं कर सक्ती। वे स्वात्म—प्रकाशमें स्वरूप तन्मयतारूपी मोक्षमार्गको पा आनन्दकी झलकसे अलग नहीं होते। नारकी जीव लोभको

जिस अंतर्मुहूर्त काल तक रखते हैं, उससे संख्यात २ गुणा अधिक काल तक क्रमसे माया, मान तथा क्रोधका अनुभव करते तथा देव क्रोधको जिस अंतर्मुहूर्त तक भोगते, उससे संख्यात २ गुणा काल तक क्रमसे मान, माया और लोभको धारण करते हैं। और मनुष्य तिर्यंच जिस अंतर्मुहूर्त काल तक लोभ कषायको रखते हैं, उससे संख्यात २ गुणा काल तक क्रमसे माया, क्रोध और मानके हमलोंको सहन करते हैं। वास्तवमें चार गतिमें उत्पन्न नाना प्रकारके सुखदुःख रूप धान्योंको पैदा करनेवाला इस संसारी वैश्यका चाकर–भृत्य कषाय ही है। यही बन्धरूप क्षेत्रको तैयार करता और मिथ्यादर्शन रूप जीवके संक्लेश परिणामरूप बीजको बोता है. जिसके कभी कडुवे कभी मीठे फल भोग २ यह जीव मीठे फलोंके लोभमें तरसा करता है, परन्तु अमृतमई स्वरूप भोग्य फलोंको न पाकर वृथा परमें सुख कल्प आकुलित होता है और अंतरात्माकी तरह निःकषाय भावसे रचित शान्त भावकी सुखप्रद अमृतियोंको नहीं पा **अनुभवानन्द**के रससे वंचित रह भव–भ्रमण करता है। धन्य है कषाय–विजयी वीर आत्मा जिनकी आत्मभूमिको कषायोंका वेग किसी भी तरह मलीन नहीं कर सक्ता, जो निरन्तर आत्मज्ञानका सुधारूप रसपान करते हैं वे ही भवके क्षणिक सुखोंसे अतीत, अतीन्द्रिय, अविनाशी **अनुभवानन्द**को भोग तृप्त रहते हैं।

———

ज्ञानमार्गणाकी महत्त्वता।

(४७)

स्वसंवेदनज्ञानद्वारा मनन योग्य, सदा शुद्ध निरंजन, परम पारिणामिक भावका स्वामी, टंकोत्कीर्ण, ज्ञायक, एक–स्वभाव, सहज समाधिलीन, निर्विकार पदचारी, निराकुल ध्यान–कलाधारी, भवहारी संतनको सुखकारी, अत्यंत प्यारी मनोहारी छबिकी अटलबहारी जिस समय अंतरात्माके उदासीन तन प्रदेशोंपर आधारी हो जाती है तब ऐसा ही प्रतिभासता है, मानो आसमानी वस्त्रपर हीरे–रत्नके छोटे २ टुकड़े जड़ दिये गये हों। चन्द्रकान्तमणिकी प्रभा सदृश प्रभावान् आत्मद्रव्य जब शशि सम उज्ज्वल परमात्मासे भेंट करता है तब उसके अंग २ से अमृतकी धारा बरसने लग जाती है जब श्रुतज्ञानकी पवनसे दीप्तिवान धर्मध्यान और शुक्लध्यानरूपी अग्नि अनादि कालसे आत्मारामको अचेत करनेवाले कर्मोंको जलाती है तो एकाएक स्वप्रभा लोकालोकको देखनेवाली उदयमान हो जाती है। इस केवलज्ञानमई प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञानमें विराजित आत्मा सकल परमात्मा हो, अपने विहारसे जगत्के निकट भव्योंको मार्ग दिखाता हुआ अटल स्वभावमें रहकर अनंतसुखको भोगता है। यद्यपि योगीराज निज तपकी शुद्ध भावनासे रहित, शुभ अनुरागकी उज्ज्वलतासे अवधिज्ञान प्राप्तकर रूपी पदार्थोंको देखते हैं और पिछले अगले भवोंके चरित्रोंको जान लेते हैं। अथवा मनःपर्य्ययज्ञान उपलब्धकर अन्योंके मनमें वर्तनेवाले सूक्ष्म रूपी विषयोंका ज्ञान सरल व वक्र रूपसे कर लेते हैं, परन्तु इन दोनों ज्ञानोंसे अपने

शुद्धात्मानुभवकी सहायता कुछ भी पाते नहीं। जिस अनुभवके लिये उनको गुणवान् सुखथान श्रुतज्ञान ही की शरण लेनी पड़ती है। इन्द्री और विषयके संयोगके पीछे होनेवाले समयमें वस्तुका सत्तामात्र सामान्य निर्विकल्प अवलोकन दर्शन है। तत्पश्चात् देखे हुए पदार्थका वर्ण संस्थानादि विशेषका ग्रहण सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। उसीके विशेष रूपको जानते हुए निश्चयपर आना, और उसे कालान्तरमें न भुलाना सो सर्व मतिज्ञान है। ५ इन्द्रिय और मनके द्वारा पदार्थके विषयका ज्ञानमात्र होना मतिज्ञान है; परन्तु उस ज्ञानसे सुखरूप व दुखरूप होना अथवा स्वप्रयोजनको पहिचान, हेय उपादेय समझना सो सम्पूर्ण महिमा श्रुतज्ञान ही की है। वृक्षादि एकेंद्री भी स्पर्श इन्द्रियद्वारा मात्र स्पर्श विषय मालूमकर अपने साथमें रहे हुए अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके कारण ही दुख-सुखका वेदन करते हैं। धन्य है! अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, जिसके अपुनरुक्त अक्षर $\frac{६}{२}$ द्विरूपवर्गधारा-१ अर्थात् (१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५) २० अंक प्रमाण संख्याको लिये हैं। तथा इनके बने हुए आचारांगादि द्वादशांगमें समाये हुए पद (११२८३५८००५) दस अंक प्रमाण हैं। एक पदमें (१६३४८३०७८८८) ११ अंक प्रमाण अपुनरुक्त अक्षर हैं। अब शेष अंग वाह्य (८०१०८१७५) ८ अंक प्रमाण अक्षरोंमें सामायिक आदि १४ प्रकीर्णक होते हैं। इतने विस्तार किये जाने पर भी यद्यपि सम्पूर्ण श्रुतज्ञानके धारी श्रुतकेवली सर्व वस्तु-स्वरूपको जानते हैं, तथापि अगाध केवलज्ञानरूप समुद्रका श्रुत ज्ञान एक

बिन्दु मात्र ही ज्ञान है। जिस ज्ञानमार्गणामें वस्तुकी अनेकान्तता प्रतिभासती है उस ज्ञानमार्गणाके धनी एक अकेले आत्मारामें अपूर्व ज्ञाता दृष्टापनेकी शक्ति है । धन्य है आत्मा जिसके एक २ शुद्ध निर्मल प्रदेशमें यह अपूर्व शक्ति व्यक्त भावको भज रही है। शुद्ध निश्चय नयसे ऐसा ही स्वभाव सम्पूर्ण विश्वके अनंतानंत आत्माओंका है। जो कोई अंतरात्मा इस शुद्ध निश्चय नयकी एकत्व दृष्टिसे सर्व जीवोंके शुद्ध स्वभावकी एकताका अनुभव करते हैं वे एक ब्रह्ममई शांत–समुद्रमें डूबकर, अद्वैत–रसकी शीतलता उपलब्ध करते हुए, परमानंदमई सुधास्वरूप अनुभवानन्दका अनुपम स्वाद ले, परम तृप्तताके पात्र बन अजर अमर पदवीके भोगी होते हैं।

संयममार्गणामें स्वरूप विकाश।

(४८)

सुधा–समुद्र–अवगाही, गुणसमूह–प्रवाही, निराकुल पद–ध्यायी, चैतन्यता समुदाई, शिवराई चेतनराम जब निज अनुभवके विलासमें हुल्लासमान होता है तब परपदार्थोंके समूह अपनी सम्पूर्ण चंचलता और विकटताको लिये हुए आत्मारामकी वीतराग भूमिसे विदा हो जाते हैं और उनके जाते ही उस वीतरागमई पृथ्वीमें ऐसी स्वच्छता प्रतिभा समान होती है कि, उस आत्माके ज्ञानके सन्मुख स्वभावसे ही आए हुए पदार्थ अपनी यथार्थताको दिखलाते हुए माया और कपटके परदोंमें छिपे रहते हुए भी कभी भी चतुर चैतन्यको अचैतन्य नहीं कर सक्के । संसारी अंतरात्मा निज शुद्धात्म गुफा

प्रवेशरूप संयमका उत्साही हो ज्यों ही अपनी रक्षाके यत्नमें लग जाता है त्यों ही पंचेन्द्रिय विषयोंकी ओर मनकी विषयप्रवृत्ति रुक जाती है तथा षट्कायके जीव उस अंतरात्मासे अभयदानको पाने लग जाते हैं। **असंयम** भावमें स्थित हुआ जीव भी यद्यपि विषय निरोध और पर दयाकी प्रगटतासे वञ्चित होता है तथापि जब शुद्ध बुद्ध ज्ञायकाकार टंकोत्कीर्ण एक निजस्वरूपानन्दमें अनंतानुबन्धी कषायके दबनेसे स्वरूपाचरण चारित्रके द्वारा एक निमेष मात्रके लिये भी मग्न हो जाता है, तो स्वतः स्वभाव ही निश्चय संयमको पाकर आनन्दका अनुभव कर लेता है। अप्रत्याख्यानावरणी कषायोंके उपशम होनेसे इस अंतरात्माको ऐसी शक्ति होजाती है कि यह इन्द्रिय विषयोंके रोकनेमें और परजीवोंकी रक्षामें अपने परिणामोंको चढ़ाता हुआ **देशसंयम**को पाकर एक प्रतिमासे ग्यारह प्रतिमा तकमें आरोहण कर ऐसा शीघ्र २ शुद्धात्म गुफामें प्रवेश करनेका उत्साह और उद्यम करता है कि मानों इसको भव–थितिकारी परिणामोंसे ग्लानि ही पैदा हो गई है। यह श्रावकव्रत–धारी आवश्यकतानुसार कहीं २ अधिक व कम आरम्भ भी करता है व परिग्रह पोट भी धरता है, परन्तु यह सब कार्य उस अपराधी चोरके समान करता है जो मुक्त होनेकी इच्छा होनेपर दूसरोंके द्वारा कार्य्य बजानेके लिये प्रेरित किया जाता है। संज्वलन कषायकी स्थूल तथा मंद अवस्थाको पाकर जब यह अंतरात्मा **सकलसंयम**में प्रविष्ट होता है तो छठेसे नौमें गुणस्थान तक **सामायक, छेदोपस्थापना** और **परिहारविशुद्धि** संयमोंके द्वारा ऐसा स्वरूप मगन होता है कि ध्यानावस्थासे विचलित

होना एक बड़ा कष्ट समझता है और अपने प्रशंसनीय संयम भावसे शुक्लध्यानको ध्याता हुआ निश्चय स्वरूपके स्वादमें आनन्दित हुआ करता है । मात्र एक संज्वलन लोभ-की झलक अंतरात्माके निकट रह जाती है, तब यह **सूक्ष्म-सांपराय** संयमको हांसिलकर ध्यानकी दृढ़तासे मोहवीरको हतन-कर **यथाख्यात संयमको** प्राप्त कर लेता है और तब जो निजध्येय-में द्वैततारहित आ स्थित हो जाता है तो फिर अनंतानंत कालके लिये भी निज स्वभावको छोड़ता नहीं है । त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य विकल्पोंसे अलग रह यह आत्मद्रव्य स्वात्माको ही निजा-त्माके द्वारा निजानन्द अनुभवके लिये ध्याता हुआ निजसे निजकी प्रगटताको निजमें पाता हुआ ऐसा जगके प्रसारोंसे गुप्त हो जाता है कि फिर कभी भी नहीं लौटता है तथा निर्मल स्फटिकमई वीतरागमय शय्यापर लेटा हुआ ऐसा आत्मनिद्रित हो जाता है कि हरएक सम-यहीमें विच्छेदरहित **अनुभवानन्दको** भोग सदाके लिये अतृप्त रहता है ।

दर्शनमार्गणाका अवलोकन ।

(४९)

परपद–उन्मुखता–धारी, निज सन्मुखताकारी, अविकारी, मनमथ मद–हरतारीकी शांतिमय प्रतिमा भव–तिमिरको नष्ट करती हुई निज गुण पर्यायोंमें ऐसी चमत्कारिता प्रदर्शित कर रही है कि जिसकी आभाके सामने कोटि सूर्य्य और चन्द्र लज्जायमान होते हैं । जिसका

जो स्वाभाविक धर्म है वह धर्मीसे भिन्न नहीं होता । अनंत दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य्य आत्मारामर्में सदा ही विद्यमान हैं । न कभी आवर्णित होते और न कभी खुलते हैं । स्वपदकी शुद्धताको ग्रहण करनेवाली शुद्धनय मुमुक्षुओंको ऐसा ही उपदेश करती है । यद्यपि व्यवहारनय इसी आत्माको कर्मसम्बन्धजनित भावोंसे लिप्त व कभी अलिप्त कहती है, परन्तु जो स्वसमाधिमें लीन हो उपयोगका चुल्लुओंसे निज सुधामय सरोवरसे स्वामृतका पान करते हैं उनको नयोंका विकल्प आकुलित नहीं करता । अनंत धर्मोंका धनी जो आत्माराम है उसका प्रत्येक समयमें उसके अनंत गुणों करके सहित अनुभवका रस वेदना उसी प्रकारसे हुआ करता है, जिस तरह एक सहस्रजड़ी बूटियोंसे बनी गोलीका रस किसी औषधि सेवीको हो । जबतक अद्वैतताका परम स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता तबतक यह ध्याता ध्येयको ध्याता हुआ औषधि सेवीके रसानुभवके समान आचरण करता है । परम स्वास्थ्य लाभ करनेपर यह स्वयं रस-सागर हो जाता है और अपनी अव्यक्त तरंगोंमें आप ही रंजित रहता हुआ कभी भी अपने सत्वको स्वभावसे प्रतिकूल नहीं करता । यद्यपि अनंतदर्शन आत्माका स्वभाव है तथापि संसारी आत्माओंके चारित्रोंको देखते हुए, उनके इस स्वभावकी प्रगटता भिन्न २ रूपसे हो रही है । चौइन्द्री और पंचेन्द्री जीव तो चक्षुदर्शनावरणीकर्म-के क्षयोपशमद्वारा चक्षुदर्शनसे अपने नेत्रोंसे रूपी पदार्थोंका सामा-न्य अवलोकन करते हुए भी उसका विशेष समाचार अपने मति-ज्ञान और फिर श्रुतज्ञानके द्वारा ही जानते हैं । वस्तु सामान्य–विशे-

षात्मक है। सामान्यका अवलोकनरूप ग्रहण आत्माका दर्शन गुण करता है और विशेषका जानना ज्ञानगुणके आधीन है। खेद है, यह चक्षुदर्शन अरूपी आत्मारामके अवलोकनसे वंचित रहता है। एकेन्द्रीसे पंचेन्द्री असैनी तकके जीव अचक्षुदर्शनावरणा कर्मके क्षयोपशमके कारण **अचक्षुदर्शनके** द्वारा रूपी पदार्थोंका स्पर्श, रस घ्राण और श्रोत्रइन्द्रियोंसे अवलोकन कर लेते हैं, परन्तु अरूपी निजवस्तुके दर्शनमें अपनी गतिको नहीं पाते। जो पंचेन्द्री मन-सहित होते हैं—वे अरूपी पदार्थोंके दर्शनमें भी शक्तिमान् होते हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन—मित्रकी सहाय बिना अपने आत्मस्वरूपको देख नहीं सक्के। जो जीव **अवधिदर्शनकी** लब्धिसहित होते हैं, वे दूरवर्ती परमाणुसे महास्कंध पर्यन्त रूपी पदार्थोंको ही ही देख सक्के हैं, परन्तु उसके द्वारा अरूपी आत्माके दर्शन करनेमें शक्तिमान नहीं होते। धन्य है! **केवलदर्शन**, जो एक समयमें लोक अलोकको देखता है। यह केवलज्ञानी अरहंतकी शक्तिकी अपूर्वता ही है जो केवलीके अनंतगुण एक समयमें ही अपना कार्य्य करते हैं। जिस समय केवलदर्शन देखता और केवलज्ञान जानता है उसी समय केवली निजस्वरूपानन्दी वस्तुका स्वाद लेते रहते हैं। **दर्शनमार्गणामें** भेदोंकी कल्पनारूप आत्माओंका अवलोकन होता है, परन्तु दर्शनमार्गणारहित अवस्थामें इस मार्गणाका कहीं भी चिन्ह नहीं होता। शुद्ध बुद्ध निराकुल पद—आरोही आत्मा अभेदरूप रह निज स्वसंवेदन सिंहासनपर तिष्ठा हुआ अपनी मनोहारी यथार्थताका अनुभव करता हुआ ऐसा स्वरूप मगन रहता है कि निज **अनुभवानन्दके** लाभको कभी भी त्यागता नहीं।

लेश्यामार्गणामें भवभ्रमण ।

(९०)

निष्कषाय, निरावरण, निर्लेप, निर्लेश्य, निर्द्वन्द्व, निराकार, सत-सुखी, समाधि–तंत्रलीन, सर्व दोषहीन, अक्षीण,निजगुण–रत्नाकराधीन, समीचीन चैतन्य स्वरूपके अनुभवकी रागनी इस भव्य जीवके रोएं रोएंको प्रफुल्लित कर रही है और आत्माको सकंप करती हुई समाधि भक्तिमें ऐसी अनुरागिणी कर रही है कि, यह आत्मा पुण्य-कर्मोंको अतिशय रूपबंध करता हुआ भी अबंध, अकर्म, सिद्ध-स्वरूपकी उपलब्धिमें अत्यन्त विव्हल हो रहा है । यह स्वरूप-खोजी संसारके संकल्प, विकल्प स्वरूप कंटकमय वृक्षोंके बनोंसे भागकर आम्रफलोंसे पूरित सघन स्वगुण वृक्षोंकी आत्मसत्तारूप वाटिकाकी छायामें जाता है और एकान्तताकी अनुपम सुगन्धको लेता हुआ ऐसा मग्न हो जाता है कि सर्व संसारको भुलाकर एक अपूर्व संसारातीत वस्तुकी भावना करता हुआ परमानन्द रसका वेदन करता है । धन्य है। यह संतोषी आत्मा जो बड़ी कठिनतासे निज सुधा–समुद्रके तटपर आया है । इसकी आत्मपरिणति ऐसे मंद कषायसे लिप्त है कि शुक्ललेश्याकी महिमाको प्रगट कर रही है । जो जीव वैरधारी, भंडाक्रिया–स्वभावी, हिंसापरायण, दुष्ट, हठी, स्वतंत्रमार्गी पर नाशमें हर्षित चित्त होते हैं वे कृष्णलेश्याके धारी होकर मात्र आम्रफलकी इच्छासे सम्पूर्ण आम वृक्षको जड़ मूलसे उखाड़नेवालेके समान परिणाम धारकर तीव्र कर्मका बंधकर नारकी, तिर्यंच व कभी दुष्ट नर और भवनत्रिक हो जाते हैं । खेद है !

इनको आनन्द धाम, शिवराम, अभिरामकी खबर तक नहीं होती और यदि सम्यक्तके कारण किसी की श्रद्धामें कभी होती भी है तो वह निरंतर अनुभवमें प्रवृत्ति नहीं रखती। जो जीव निर्बुद्धि, विषयलोलुपी, मानी, मायाचारी आलसी, निद्रालु, धन, धान्यके तीव्रानुरागी आम्रफलके लिये आम्रवृक्षके स्कन्धको तोड़नेके उत्सुकके समान परिणामधारी होते हैं। वे जीव **नीललेश्या** स्वभावी होकर तिर्यंच दुष्ट मनुष्य व भवनत्रिक देव हो वा पंचम नरक तक जाकर दुःख ही को भोगते हैं, परन्तु स्वात्माधीन सुखके नित्य अनुभवसे छूटे रहते हैं। जो जीव रोष–धारी, परनिन्दक, पर दोष, आरोपक–शोकी, भयभीत, आत्मप्रशंसी अश्रद्धालु, खुशामद–प्रिय, हानि वृद्धिअजान, स्तुति किये जानेपर रणमें मरणको उद्यत तथा अपना सर्वस्व दे देनेवाले व निज कार्य्य अकार्य्यको न गिननेवाले होते हैं। वे जीव आम्रवृक्षके लिये आम्रफल युक्त बड़ी शाखाके तोड़नेके अभिलाषीके समान परिणामकर **कापोत–लेश्यासे** कर्मबंद करते हुए भवनत्रिक देव, नर, तिर्यंचसे ले तीसरे नरक तक जाकर दुःख ही का अनुभव करते हैं और जो कोई जीव काललब्धिकी निकटतासे सम्यक्तधारी असंयत होते हैं, वे कुछ आत्मसुखकी श्रद्धासे साताभावका भी उपयोग कर लेते हैं। पुण्यके उदयसे जो जीव कार्य्य, अकार्य्य, सेव्य, असेव्यके ज्ञाता होते, सर्वको समदृष्टिसे देखते, दयादानमें रत और कोमल स्वभावी होते हैं, वे जीव आम्रफलके आम्रकी छोटी डाली तोड़नेके उत्सुकके समान **तेजोलेश्याके** धारी हो पुण्य बांध चौथे स्वर्ग तक जाकर इन्द्र व ऋद्धिधारी देव होते व

मनुष्योंमें बलभद्र, चक्रवर्ती तक होते हैं । परन्तु जो सम्यक्दृष्टि होतेहैं—वे ही साक्षात् आत्मानंदका रस वेदते हैं। जो जीव त्यागी, भद्रपरिणामी, सुकर्मकर्त्ता, क्षमाशील तथा साधु पुरुषोंकी भक्तिमें रत होते हैं, वे जीव आम्रफलोंको तोड़कर खानेवालेके समान पद्मलेश्यावान् हो सुकृत बांध मर कर तीसरे स्वर्गसे १२ वें स्वर्ग पर्यंत पैदा होते हैं। सम्यक्तकी कृपा हुई तो सहजानंदकी मिठाई भी खाते हैं। जो जीव पक्षपात और निदानरहित स्नेह होते हुए भी राग द्वेषके त्यागी सर्व पर समभावी होते हैं, वे जीव जमीनपर पड़े हुए आम्रोंको खानेके इच्छुकके समान शुक्ललेश्यावान् हो ११ वें स्वर्गसे सर्वार्थसिद्ध तकमें जाकर ९ ग्रीवकके ऊपर तो सर्व ही निरन्तर स्वात्मानंदका स्वाद लेते हुए द्रव्योंकी चर्चामें रत रहते हैं। धन्य हैं वे जीव जो क्षपकश्रेणी चढ़ शुक्ललेश्याधार १४ वें गुणस्थानमें अलेश्य हो पर्य्याय त्याग लोकाग्र जा सिद्ध भावके अमल अतीन्द्रिय सुखको भोगते हुए लेश्यामार्गणासे सर्वथा सर्व कालके लिये भिन्न हो निर्मल फटिक घटमें भरित निज-सुधाका स्वाद ले परम अनुभवानंदमें तृप्त रहते हैं।

भव्याभव्य विकल्प न करना।

(९१)

भवदधि—नौकाधारी, स्वप्रताप—विस्तारी अविकारी आज अत्यन्त प्रसन्न वदन हो शीघ्र २ भवसमुद्रके दुःखरूप खार जलको पार क-

रता हुआ नवशिवद्वीपको बढ़ा चला जा रहा है। इसका भवसमुद्र इसीके घटरूप मध्यलोकमें विराजित है; सम्यक्तरूपी नौकाके द्वारा यह भव्यात्मा पाप पुण्यरूप जलको हटाता हुआ भावोंकी विशुद्धतारूप शीघ्र गतिसे भवदधि–तटके निकट चला जा रहा है। इसकी वीतराग स्वसंवेदनजन्य अनुभूति तिया इसके कंठमें सुकरको क्षेपे हुए आनंदरूप मंद सुगंध पवनकी गतियोंसे इसको उन्मत्तताकी दशामें देख तथा आप भी उन्मादी होती हुई एकाग्रताके भावमें सम्पूर्ण जगत्को विस्मरण करती व कराती हुई शिवानन्दका आल्हाद मना रही है। मध्य मध्यमें परम मिष्ट ध्वनिके साथ अनुभूति तिया "**सोहं**" का गान गाती है और चेतनाराम स्वरूप भावनाका **हारमोनियम** बजा तानमें तान मिला एक तान गतिकी महिमाको विस्तार कर रहे हैं। अनुभूति तियाकी सखियें उपशमता, संवेगता, वैराग्यता, आस्तिक्यता, भक्ति, वात्सल्यता, अनुकंपा, क्षमा आदि चेतनाराम और अनुभूतिकी रक्षामें भले प्रकार दत्तचित्त हैं; बारम्बार सेवा और वैय्यावृत्य करके अपनी हार्दिक प्रीति प्रगट कर रहीं हैं। धन्य हैं! वे जीव जो दुःख सागरमें स्वधनको लूटनेवाले पंचेन्द्रिय विषयरूपी चोरोंके बृहत् जालमय–जहाजके आक्रमणसे अपने यानकी रक्षा करते हुए तीव्र कषायोंकी पवनोंसे उसे बचाते हुए परम हर्षमें स्वकार्य्यके सन्मुख हो रहे हैं। यही अत्यन्त निकट भव्य जीव हैं। इनके आत्माओंमें शुद्ध होनेकी योग्यता अनादिकालसे थी और वह योग्यता अब अपने कार्य्यकी प्रगटतामें उद्यमवंत हो रही है तथा शीघ्रही पंचम धामके आनन्दको प्राप्त करायेगी। यद्यपि अभ-

व्य जीव राशि युक्तानन्तकी संख्यारूप ही है और शेष भव्यराशि है तथापि अनन्तानन्त भव्य जीवोंमेंसे निकट भव्यता पाना अत्यन्त दुर्लभ है। क्या शुद्ध सुवर्ण होनेकी योग्यता रखनेवाला सर्व ही सुवर्णका पाषाण सुवर्ण हो जाता है? कभी नहीं; उसी प्रकार आसन्न भव्योंका परिमाण लघु है। सर्वज्ञ वीतरागके वचन प्रमाणभूत हैं, क्योंकि वीतराग सर्वज्ञ अन्यथावादी नहीं हो सक्ते हैं। इस आगम प्रमाणके द्वारा **भव्यमार्गणा**का स्वरूप जानकर जो इस बातके विकल्पमें नहीं पड़ते कि हम भव्य हैं या अभव्य, किन्तु पुरुषार्थकी डोर हाथमें ले धर्म अश्वपर आरूढ़ हो चले जाते हैं। वे ही वीर पुरुषार्थी हैं। वे यदि अभव्य भी हुए तो नौ ग्रीवक तककी सैर कर आते हैं और जो भव्य हुए तो साक्षात् आत्माधीन आनन्दका विलास पाते हुए अनंतमें अनंत सुखके धनी हो जाते हैं। बाह्यमें मुनि सदृश व्रत पालते हुए यथार्थ परोपदेश करते हुए, मैं आत्मभावना करता हूं यह भी ज्ञान रखते हुए, जो अंतरंगमें मिथ्यात्त्व कर्मकी प्रबलतासे विषय लालसाका रंग नहीं छुड़ा सक्ते तथा अतीन्द्रिय सुखकी जातिको नहीं पहिचान सक्ते वे द्रव्यलिंगी मुनि अपने पुण्यके फलसे ही अपनी विषय खाज खुजाया करते हैं। परन्तु धन्य हैं! भावलिंगी भव्य साधु जो भव्यमार्गणा आदि विभाव विकल्पोंसे सर्वथा पृथक् रह निज रससुधा-समुद्रमें मग्न हो **तीन-रत्न**को निकाल अपने अनुभव मुकुटमें जड़कर ऐसे शोभायमान होते हैं कि मानो मोक्षकन्याके वरनेके उत्सुक वर ही हैं। जो भव्य सुरस समाधिमें प्रवीण हैं वे ही सर्व क्षणभंगुर सुखोंसे बाह्य अविनाशी **अनुभवानंद**का स्वाद ले परम संतोषित रहते हैं।

सम्यक्त मार्गणाकी झलक।

९२

परम धरम–धारी, निजाराम–विहारी, अविकारी, शुद्धस्वरूप-संचारी, भवहारी, गुणसमूह–आधारी, रंजित शिवनारी, आत्मानंद-कारी भव्य आज धर्म ध्यान मेघ द्वारा वर्षित सुधा–सदृश जलका पान-कर अनादि तृषाको मेट निज प्रियाकी भेंटको उद्यमवन्त हो रहा है। धन्य है! यह जीव जो मनसहित पर्याप्त जागृत सद्लेश्यावान् और ज्ञानी हो पापसे चित्त मोड़ जिनवाणीसे अनादिके अज्ञान बंधनको तोड़ अपने कर्मोंकी स्थितिको अंतः कोड़ाकोड़ी सागर कर प्रायोग्य लब्धिद्वारा प्राप्त समय २ अनंत गुण विशुद्धता करनेवाली कारण-लब्धिकी महिमासे सम्यक्तको प्राप्तकर चुका है। इसको संसारमें अनादिसे रुलानेवाली मिथ्यात्व प्रकृति अपने चार सहकारी योद्धा अनंतानुबंधी कषायोंके साथ इसके पाससे दुबककर अलग बे काम बैठ गई है, परन्तु बैठे २ इसने अपने एक रूपके तीन रूप कर लिये हैं और दोके दो नाम भी रख लिये हैं जैसे मिश्रमोहनी और सम्य-क्तमोहनी। यद्यपि मिथ्यात्त्व प्रकृति उपशम होगई है तथापि उसकी यह स्थिरता कमसे कम एक आवली और एक समय और अधिकसे अधिक एक समय कम ४८ मिनट ही रहती है। इस अंतरमुहूर्तके समाप्त होते होते ही मिथ्यात्त्वके तीनों रूप और सहकारी चारों योद्धा अलग २ उस बिचारे आत्माके निर्मल परिणामको आक्रमण करनेकी चेष्टा करते हैं। यदि मिथ्यात्त्वका जोर लग गया तो वह

बिचारा तुरत मिथ्यादृष्टी होता है। यदि चारों योद्धाओंमेंसे किसीका दाव पड़ गया तो सासादन अवस्थामें आ कमसे कम एक समय उत्कृष्ट छः आवलीके बीचमें गिरता पड़ता मिथ्यात्त्वकी भूमिमें चला जाता है। यदि मिश्रमोहनीका वश चल पड़ा तो वह उपशम सम्यक्ती दही गुड़के समान मिले हुए सम्यक्त मिथ्यात्त्व श्रद्धानमें अन्तर्मुहूर्त्तके लिये आजाता है और यदि कुछ मंदतम पापके उदयसे सम्यक्त-मोहनीने ही पकड़ लिया तो सम्यक्तसे सर्वथा न गिरकर निर्मलभावसे चलमल अगाढ़ रूप श्रद्धाभावमें आजाता है और तब अपना नाम क्षयोपशम सम्यक्ती कहलाता है तथा इस भावको अधिकसे अधिक ६६ सागर और जघन्य एक अंतमहूर्त तक नहीं छोड़ता है। शुद्ध निश्चय—नय करके इस आत्माका सम्यक्दर्शन गुण स्वाभाविक है। परन्तु व्यवहारनय करके यही दर्शन—गुण अनादि व सादि दर्शन—मोहनीके द्वारा सर्वथा आवर्णित रहनेसे मिथ्यात्त्वके नामसे कहलाता है। इसी तरह इसी एक दर्शनगुणके ही नाम सासादन,मिश्र, उपशम, और क्षयोपशम हो जाते हैं। और जब किसी क्षयोपशम सम्यक्तीको कर्म-भूमिके अन्दर पैदा होकर मनुष्यभवमें केवली व श्रुतकेवलीकी पर-मकार्यकारी संगति प्राप्ति होती है, तो वही दर्शन गुण मलीनता त्याग क्षायिक सम्यक्त कहलाता है। वास्तवमें यही गुण आत्माका व्यक्तरूप सम्यक्त गुण है। आश्चर्य है कि एक ही गुण पर द्रव्यके सम्बन्धके वशसे अपने छः नाम धरकर अपनी छः प्रकारकी अव-स्थाको बतलाता है। परन्तु धन्य है! इसका स्वाभाविक दर्शनगुण, जब यह क्षायिक सम्यक्तकी अवस्थामें निर्मल हो जाता है तो फिर

इस शिवतिया आशक्त जीवको अपनी प्राण–प्यारीके साक्षात् दर्शन करनेमें और उसके संभोगका आनंद लेनेमें बहुत देर लगती नहीं। शिव–तिया सम्बन्धको मिलानेवाली स्वरूप स्वसम्वेदनरूप अद्भुत गुणको धारनेवाली अनुभूति सखी उसके ही साथ चिरकालके लिये हो जाती है और जघन्य-तया उसी ही भवसे अथवा तीसरे व चौथे भवसे उत्कृष्ट तेतीस सागर कुछ अधिकके भीतर ही उसे अटल धाममें पहुंचा मंगलमई हर्षनाद बजा शिव तियाको प्रफुल्लित करा अनुपम अपतित अमिट सम्बन्ध करा विश्राम लेती है। चेतनराम शुद्ध कानन-में जा अपनी प्रियासहित ऐसे तन्मय होते हैं कि फिर अनन्तकालमें भी उसकी एकताको त्यागते नहीं और **सम्यक्तमार्गणा**के जालसे रहित हो अपनी शुद्ध श्रद्धासे उत्पन्न भवानन्दोंसे अतीत **अनुभवानंद**का स्वाद ले परम तृप्त हो जाते हैं और संसार सन्मुख भावोंकी परिपाटीसे छुट्टी पा लेते हैं।

संज्ञी असंज्ञीकी कल्पना।

(९३)

परम–सुखकारी, समता आराम–विहारी, निज मुक्ति–तिय अटल भक्ति धारी, स्वसत्ता प्रेम संचारी चैतन्यनाथ अपने विमल स्फटिक मणिमय विशाल महलके ऊपर बैठा हुआ त्रिलोकमई आकाशकी छवि इस अनुपम वीतराग दृष्टिसे देख रहा है कि जो विचित्र पदार्थ संसारी इन्द्रिय–विषयाधीन व्यक्तियोंको कभी रागी, कभी द्वेषी, कभी मोही कभी शोकित, कभी आतुर, और कभी आकुलित बनाते हैं–वे ही पदार्थ

इस समदृष्टि धारीको अपनी एकाग्र दृष्टिसे हटा नहीं सक्ते। जो निज स्वरूप परिणतिकी अटल सुदर्शन मेरुवत् अडिग श्रद्धामें लीन हैं, उनको न चक्रवर्तीकी संपदा और न अनेक उपसर्ग और परीषहों-की युगपत् आपदा कभी विकारी बनाती है। अनेक सेवकों द्वारा गाई हुई प्रशंसा व अनेक द्वेषियों द्वारा की हुई निन्दा उनके दृढ़ पर्वत समान उपयोगके ऊपरसे मेघधाराके समान बहकर चली जाती है। वे साधु महात्मा भव भव-भ्रमणकारी कर्मचक्रके भीतर पुनः प्रवेश होनेसे उन्मुख रहते हैं। इनके अंतरंगमें स्वरूप स्वसंवेदन धाराधर नित्य अमल अनुपम अमृतकी वर्षा किया करता है। जिस वर्षासे भवतापको हरते हुए ये भव्य जीव अपनी अंतःकरणकी स्वच्छ भूमिमें भेदज्ञान—बीज डाल आत्मध्यानरूपी अंकुरको फुटा स्वात्मीक धर्मरूपी वृक्षको बढ़ाते हैं, जिसके उत्तम क्षमारूपी शाखाओंमें कोमल मार्दवगुणरूपी पत्तोंको देख आर्जवगुणरूपी रंगकी बहार ले शौचगुण-रूपी निर्मलताईपर मोहित हो सत्यता पवनकी मंद हिलोरोंको स्पर्श, संयम—परिणतिरूपी वृक्षकी सुडौल सघनताई पेख, तपरूप मनोहर पुष्पोंसे निकली हुई त्यागरूपी सुंगधकी बास ले, आकिंचन्यरूपी भ्रमरोंकी मोहनेवाली तान सुन तथा ब्रह्मचर्य्यमई शीतल छायामें बैठ मुमुक्षु जीव रोमाञ्चवदन होते और ऐसे वृक्षकी संगतिसे परमशुद्ध कार्य्य समयसारके मिष्ट फलोंको पा उनका स्वाद ले अपनेको त्रिकाल विजयी जानते हैं। परन्तु खेद है कि, ऐसे सुखदाई वृक्षकी तरफ हमारे भ्राता अनंतानंत मन रहित असंज्ञी जीव किसीभी तरह पहुं-चनेकी योग्यता नहीं रखते। न वे शिक्षा ले सकते, न विचार पूर्वक

क्रिया कर सकते, न उपदेश सुन समझ सकते, न वार्तालाप कर अभिप्रायोंको बतला व जान सकते, न कार्य्य करनेके पहिले सुकार्य्य व अकार्य्यकी तर्कद्वारा पहिचानकर सक्ते, न तत्त्व कुतत्त्वको मालूम कर सकते और न नामके द्वारा पुकारनेसे आसकते, बरननो इन्द्रियावरण-कर्मके आधीन रहकर इसी अज्ञान अवस्थामें पर्य्याय पूरी करते हैं। जो देव, नारकी, पशु तथा मनुष्य नोइन्द्रियावरणके क्षयोपशमसे इन सब कार्य्योंकी योग्यता रखते हुए मनसहित **संज्ञी** कहलाते हैं, उनमेंसे भी घनेरे मिथ्यात्त्वके वश पड़े उस धर्म–वृक्षके निकट नहीं जाते। धन्य हैं! वे अत्यन्त निकटभव्य, जो अपनी मानसिक शक्तिका सच्चा उपयोग विचार परमधर्मरूपी वृक्षकी सेवा करते २ ऐसे बेहोश होजाते हैं कि संज्ञी होते हुए भी संज्ञी असंज्ञी विकल्पसे दूर रह **संज्ञीमार्गणासे** अतीत परमतत्त्वकी भावना कर भवविकारी सुखोंसे विलक्षण **अनुभवानंद**का स्वाद ले परम उन्मत्तकी नाईं निज स्वरूपके आंगनमें ही नित्य नृत्य किया करते हैं।

आहारक मार्गणाका विकल्प।

(९४)

स्वरूप–खोजी, समरस–भोजी, निज निःकंटक राज्य संयोगी, सम्यग्दृष्टी आत्मा अपार समुद्रवत् संसारकी भयावनी मूर्तिसे अत्रासित होता हुआ, निजको परमात्मा शुद्ध बुद्ध अविनाशी मानता हुआ, त्रिलोक–पतिपनेके महत्त्वसे अपनेको अतिशय प्रभावशाली लखता हुआ, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रके विकल्प-

भावसे छूटा हुआ तीनोंके रससे प्रत्येक प्रदेशमें भीगा हुआ शुद्ध अनुभूतितियाके रमणमें उन्मत्त होता हुआ अपने आपमें सिद्ध-शिलका स्थान रखता हुआ वीतरागताकी मनोहर तरंगोंसे उछलता हुआ ऐसा हर्षायमान हो रहा है कि जिसके हर्षके प्रकाशके सम्मुख आकुलताका अंधकार विलयको प्राप्त हो गया है तथा चिरकालसे अप्राप्त जो अमृतमई शुद्ध स्वर समय व्यंजन उनका लाभ ले तथा उनका स्वाद ले ऐसा पुष्ट हो रहा है कि जिससे इसकी आत्मामें अनुपम वीर्य्यका प्रादुर्भाव होता जाता है और पर पुद्गलमई आवरण अस्तभावको प्राप्त होता जाता है। यद्यपि यह आत्मा स्वयं ही शुद्ध और सिद्ध है तथापि अनादि पर सम्बन्ध जनित कर्मोंके मिलापसे अशुद्ध हो रहा है। इस अशुद्धताके निमित्तसे ही निरन्तर द्रव्यकर्म और नोकर्मकी वर्गणाएं आत्माके निकट आती हैं और जीवके सूक्ष्म तथा स्थूल शरीरोंमें प्रवेश कर जाती हैं। जबतक यह आत्मा योगरहित केवलज्ञानी अरहंत नहीं होता तबतक कोई समय ऐसा शेष नहीं है, जिसमें यह आत्मा ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंको न आकर्षित करे। इसी कारण द्रव्यकर्मकी अपेक्षाको न गिनकर ही इस जीवको कभी **आहारक** और कभी **अनाहारक** कह दिया करते हैं। औदारिक, वैक्रियक, आहारक तथा भाषा और मनोवर्गणाको आकर्षण करता है, इससे इस जीवका **आहारक** और जब इनको आकर्षण नहीं करता तब इसको **अनाहारक** कहते हैं। जो संसारी जीव स्थूल शरीरको तज अन्य स्थूल शरीरके लिये जाता है तब मध्यमें उसकी अव-

स्थाको **विग्रहगति** कहते हैं। इस अवस्थामें तथा मूल परमौदारिक शरीरमें रहते हुए भी तीन लोकमें अपने आत्मप्रदेशको व्याप्त करानेवाले समुद्घात दशाके धारी केवलीमें अथवा अयोगकेवलीमें तथा श्रीसिद्ध जीवोंमें नोकर्मोंका प्रवेश नहीं होता। इससे इन नोकर्म ग्रहणरहित आत्माओंको **अनाहारक** कहते हैं, परन्तु यह सर्व कथन व्यवहार नयाधीन है। शुद्ध निश्चयनय करके **आहार-मार्गणाके** विकल्पोंसे रहित नोकर्म और द्रव्यकर्मसे तीनों कालमें भी स्पर्शको नहीं प्राप्त करता हुआ यह टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव स्वसमाधिकी मनोहर नौकामें बैठा हुआ भवसमुद्रकी मंजिलको तय करता हुआ चला जा रहा है। मार्गमें कषाय—शत्रुओंके आक्रमणसे अपने चैतन्य धनकी रक्षा करता हुआ कभी भी प्रमादकी निद्रामें अचेत नहीं होता है। पथका काल अत्यन्त विस्तारयुक्त होनेसे यह स्वरूपाश्रित उपशम भावके शांत जलको तथा समता-भावके मिष्ट स्वादिष्ट आहरको जो उसको उसी नौकामें प्राप्त होते हैं ग्रहण करता हुआ मुक्तदीपकी ओर दृष्टि लगाए हुए सोहंकी सुरीली तान गाता हुआ भवके क्षणिक सुखोंसे अतीत **अनुभवानंदका** उपभोग करता हुआ परम तृप्तताका लाभ कर रहा है।

पंच व्रतोंकी छटा।

(९९)

अबंध, अकल, अरूपी, अजर, अमर, अनूपी, अटूट आनन्द स्वरूपी आत्मा आज अपनी अनोखी आभाके आकाशमें आभास करता हुआ

शशिपूर्ण कलाको लज्जित कर रहा है। निष्कलंकताकी ध्वजा फहराता हुआ यह विशाल आत्ममंदिर शिखर स्वस्वरूप स्थित अगुरुलघु गुणद्वारा षट्गुणी हानि वृद्धिसे ध्वजाकी हलन चलन करता हुआ अति आसन्न भव्य जीवोंको निज निकट आह्वान कर रहा है। जो जीव स्वरूप सन्मुख होकर उस शशिमुखपर अपनी दृष्टिकी टकटकी लगाते हैं—वे जीव तापको मिटा शांतताको पा शशिनिर्गत सुधा बिन्दुओंका पानकर स्वजन्म कृतार्थ करते हैं। जो जीव द्रव्यश्रुतके रसिक हों उसी रसके मदमें भरकर भावश्रुतको नहीं उपलब्ध करते हैं वे जीव वृथा ही वालू पेल तेलकी आशा करते है। जिस तत्त्वमें १४ गुणस्थान और १४ मार्गणा स्थानका प्रवेश नहीं हैं, जो तत्त्व सात नय और उपनयोंसे दूर है, जहां नामादि निक्षेपोंका व्यवहार नहीं हो सक्ता, उस तत्त्वकी हरी भरी शोभा ही मनको प्रसन्न करती और इस मनको एक क्षणके अन्दर अमन कर देती है। मनका अमन होना इन्द्रियोंको शून्य करता है और तब आत्माका उपयोगरूपी जल सर्व ओरसे सिमटकर आप थलमें आता है और अपनेमें स्वच्छ नदीकी धारा बनाता है। इस धारामें आप ही आप नहाता है, जलक्रीड़ा करता है, अनुभूति नारीके स्वच्छ तनपर स्वजलकी पिचकारिया छोड़ता है और चिरकाल तक रमता हुआ भी कभी थकता नहीं है। इसकी यह क्रीड़ा जगत्के भीतर लिप्त जीवोंको सुहाती नहीं है। वे इस क्रीड़ाकी बातको भी सुनकर अनसुनीसी कर देते हैं। धन्य हैं! जग—उदासी जीव जो अणुव्रत और महाव्रतोंके प्रंपचमें न पड़कर अपने स्वभावकी रक्षाके लिये त्रिगुप्ति

गुप्तताका ऐसा एक मनोहर वृत्त बनाते हैं कि जिसके भीतर किसी विभाव भावका प्रवेश नहीं होने पाता। स्वभावका स्वभावमय रहना ही **अहिंसा** है, स्वभावका स्थिर हो विकारी न होना ही असत्य त्याग **सत्यता** है। स्वभावमें किसीपर चैतन्य और अचैतन्यके अनंत गुण और पर्य्यायोंका एक अंशमात्र भी लेकर न धरना ही चौरीत्याग **अचौर्य्यता** है, स्वभावमें स्वरूप सत्तारूपी तियाकी गाढ़ प्रीतिके सिवाय अन्य किसी देवी, मनुष्यणी, तिर्यंचनी, काष्ठा पाषाण चित्रकी स्त्रीकी अनुरक्तताका न होना ही और जाति अपेक्षा लोक–व्यापी निज ब्रह्ममें आचरण करना ही मैथुनत्याग **ब्रह्मचर्य्य** अवस्था है। तथा स्वभावमें निज सुधा–समूह धनके अतिरिक्त सर्व अंतरंग बहिरंग परिग्रहका लेशमात्र भी संसर्ग न करना ही परिग्रह त्याग **अपरिग्रहता** है। एक निज स्वभावमें ही पांचों व्रतोंको पा यह संयमी व्यवहारक अभूतार्थ जालसे पृथक् रह निजमें निज मगनता गह सदा भवसुखोंसे विलक्षण **अनुभवानन्द**का अनुपम रस पान किया करता है।

अनुभव सुख ही सार है।

(९६)

परमसुखदाई, सहज स्वरूप–फलदाई, स्वात्ममननकारी भव्य जीव परम स्वरूपाचरण चारित्रका लाभ कर अपनेको भव–वनमें एक अकेला कोटि सूर्यसम प्रभावान् परम तेजस्वी अनन्त दर्शन ज्ञान सुख वीर्यका

घनी मोहतमनाशक स्वपरप्रकाशक अनुभव कर रहा है। आत्मपदार्थ यद्यपि अरूपी इन्द्रियोंसे अतीत है तथा मनके भी अगोचर है, परन्तु जैसे कोई आम्रफलका स्वरूप परके द्वारा जान आमके गुणोंका भले प्रकार निश्चय कर जब उस आमके रसका स्वाद लेता है अर्थात् जब अपने उपयोगको रसके साथ एकतारूप करता है तब उसकी विलक्षण मिष्टताका अनुभव करता हुआ उसके रसमें मोह होनेके कारण साता मानता है। वैसे ही यह तत्त्वज्ञानी प्रमाण नयोंके द्वारा आत्माके स्वरूपको यथार्थ जान निश्चय करता है और तब अपने अमूर्तीक आत्माके उपयोगको इन्द्रिय–ग्राम और मन–मर्कटसे पृथक्कर परमशुद्ध परम पारिणामिक भावके धनी कारण परमात्मामें जोड़ देता है। पुद्गल परमाणुओंके बंधमें जैसे दो गुण अधिक स्निग्धता व रूक्षता कारण है वैसे ही इन अमूर्तीक शुद्ध भावोंके परस्पर बंधमें स्वस्वरूप उज्वलता कारण है। इस अपूर्व सम्बन्धके होनेमें ही अनुभवकी कला क्रीड़ा कलाप करती है और जैसे चन्द्रकला और चन्द्रकान्ति मणिका संयोग जलरूप रसको उत्पन्न करता है वैसे ही जब स्वसमतासे रंजायमान होता हुआ उपयोग साम्यता और शान्तताके पुञ्ज श्री कारण परमब्रह्ममें संयोग करता है तो अपूर्व अनुपम लौकिक सुधासे विलक्षण परम स्वादिष्ट अमृत–रसकी धारा बहने लगती है। यही परम अनुभव रस है। इसी रसके भोगनेवालेको अनुभवानन्दका विलास होता है। जो इस सुखमय धाराका शान्त जलपान करते हैं. वे ही अजर अमर हो जाते हैं। उसी स्वरूपके एकाग्रतामें मैं शुद्ध निश्चयनयसे सिद्ध अचल परमात्मा अतीन्द्रिय

सुख भोगी हूं। ऐसा गाढ़ निश्चय झलककर सम्यग्दर्शन–रत्नका विकास कराता है। उसी ही स्वरूप समतामें संशय विमोह विभ्रम-रहित अपनी अनन्त गुण शक्तियोंका ज्ञान सम्यग्ज्ञानकी प्रादुर्भावना बताता है। उसी ही स्वसमाधिमें तन्मय होकर उसी तरह लिप्त हो जाना जैसे मधुमक्खी मधुके गोलेमें आसक्त हो जाती है, सम्यग्चारित्रकी सुन्दरता झलकाती है। व्यवहारनयसे यह तीन भिन्न २ नामधारी हैं, परन्तु निश्चयनयसे एक वहां चैतन्य मात्र ही द्रव्य है। यद्यपि ध्याता ध्येयके विकल्प समय दो चैतन्य गुणोंका सम्बन्ध है तथापि उस सम्बन्धके मध्यमें किसी अचैतन्यकी पहुंच नहीं हैं। प्रथमावस्थामें यह विकल्प रह क्रमशः दोनोंका ऐसा संघात हो जाता है कि निर्विकल्पताका समां छा जाता है। उस समय द्वैतभाव हट जाता है, अद्वैततताका रंग आजाता है। उस कालके अगाध आनन्दको या तो त्रिलोक और त्रिकाल वेदी सर्वज्ञ ही जानते हैं या वह ध्यान–चक्रका धनी जानता है। जगतमें मार्ग–खोजी आत्माओंको निश्चय करना चाहिये कि यही त्रिलोकमें सार है, अन्यथा–सर्व संसार असार है यही मार्ग निराकुल आनन्दका स्रोत और भवोदधिका पोत है। शिवरमणीके महलमें जानेका यही पथ है। इसीके सहारे सुख-सागरके मध्यमें स्थित मुक्तिदीपमें जा पहुंचता है और तब अनन्त कालके लिये अनुभवानन्दमें लीन हो जाता है।

इतिश्री अनन्तसुखार्णवे **अनुभवानन्द** प्रकरणं समाप्तम्।

श्री पंचायती दि. जैन सरस्वती भवन झालरापाटन सिटी.